कृष्णकुमारी

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(माधुरी-संपादक)

उत्तमोत्तम पढ़ने-योग्य नाटक

कर्बला (प्रेमचंद)	१॥), २)	रामायण (बेताब)	१)
ख़ाँजहाँ (सचित्र)	१=), १॥=)	पत्नी-प्रताप ,,	॥=)
वरमाला	॥॥), १।)	चंद्रहास (मैथिलीशरण)	॥॥)
बुद्ध-चरित्र (सचित्र)	॥॥), १।)	तिलोत्तमा ,,	॥)
रावबहादुर	॥॥), १।)	जीवन्मुक्ति-रहस्य	२)
उस पार (द्विजेंद्रलाल राय)	१=)	चंद्रगुप्त (बदरीनाथ भट्ट)	॥)
दुर्गादास ,,	१)	दुर्गावती ,,	लगभग १)
नूरजहाँ ,,	१=)	तुलसीदास ,,	१।)
मूर्ख-मंडली ,,	॥) १)	कुरु-वन-दहन ,,	॥)
राणा प्रतापसिंह ,,	१॥)	नेत्रोन्मिलन (मिश्र-बंधु)	।≡)
शाहजहाँ ,,	१)	पूर्व-भारत ,,	लगभग १।)
मेवाड़-पतन ,,	॥॥=)	पाप-परिणाम	१)
उत्तररामचरित (सत्यनारायण)	१)	सत्यनारायण	१।)
मालती-माधव ,,	१)	सत्याग्रही प्रह्लाद	१)
हरिश्चंद्र-नाटकावली (भारतेंदु)	३)	संग्राम (प्रेमचंद)	१॥॥)
सत्य हरिश्चंद्र ,,	≡)	वीर अभिमन्यु (राधेश्याम)	१)
महाभारत (बेताब)	॥=)	श्रवणकुमार ,,	॥॥)

हिंदी के सब नाटकों के मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का तेईसवाँ पुष्प

कृष्णकुमारी

[बँगला के महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त-
लिखित सुप्रसिद्ध नाटक का अनुवाद]

अनुवादकर्त्ता
रूपनारायण पांडेय, कविरत्न

पर प्रिय जन्मभूमि रखने को रक्त-पात से अलग अहह !
कृष्णकुमारी ने निज तन, विष-जड़, विष पीकर त्याग दिया ।

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १॥)] १९२५ [सादी १)

प्रकाशक

श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

मुद्रक

श्रीरामकिशोर गुप्त

साहित्य-प्रेस

चिरगाँव (झाँसी)

उपक्रम

[चतुर्दशपदी]

कृष्णकुमारी काम-कामिनी-सी कमनीया, कंज-कली,
सुगुण-संयुता सुता प्राण-प्रिय राना भीमसिंह की थी।
जयपुर एवं मारवाड़ के भूपति भारी बल-धारी,
पाणि-ग्रहण करने को उसका दोनों ही लालायित थे।
इसी लालसा-पूर्ति-हेतु दोनों ने दूत उदयपुर को
भेजे थे। राना के ऊपर भय, विषाद, असमंजस ने
था अधिकार जमाया---उनका हृदय फटा ही जाता था।
"जिसकी इच्छा पर पानी फिरता है, वही शत्रु बनकर,
लेकर साथ मित्र-राज्यों को दल-बल से चढ़ आवेगा"—
यही सोचकर भीमसिंह राना की अक्ल हुई गुम थी।
पर प्रिय जन्म-भूमि रखने को रक्त-पात से अलग अहह!
कृष्णकुमारी ने निज तन—विष-जड़-विष पीकर त्याग दिया,
और मृत्यु के साथ ब्याह-बंधन को कहीं मधुर समझा,
जिसके सुंदर सुयश-सुमन का सौरभ अब भी फैला है!

❀ ❀ ❀

बंग-भाषा के कवि-सम्राट,
कुशल मधुसूदन ने यह प्लॉट
नींव-रूप के सदृश किया है एक मनोहर नाट्य-भवन।

कृष्णाकुमारी

उसी का ले हम यह अनुवाद,
उपस्थित हुए बहुत दिन बाद।
आशा है कि करेगा यह प्रिय पाठकगण का मन-रंजन।

मादाबाद (मथुरा)
२२ अगस्त. १९५९

दुलारेलाल भार्गव

नाटक के पात्र

(पुरुष)

भीमसिंह ... ... उदयपुर के राना

बलेंद्रसिंह ... ... राना के भाई और सेनापति

सत्यदास ... ... राना के मंत्री

जगत्सिंह ... ... जयपुर के राजा

नारायण मिश्र ... जगत्सिंह के मंत्री

धनदास ... जगत्सिंह का मुसाहब

(स्त्री)

अहल्यादेवी ... राना की रानी

कृष्णकुमारी ... राना की लड़की

विलासवती ... जगत्सिंह की वेश्या

मदनिका ... ... विलासवती की सखी

तपस्विनी ... ... एक सिद्ध स्त्री

भृत्य, रक्षक, दूत, संन्यासी इत्यादि

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुर के राजभवन के सामने

(मारवाड़ के दूत के साथ मर्दाने लिबास में मदनिका का प्रवेश)

दूत—कैसा आश्चर्य है ! तो उस पत्र की बातें क्या सच हैं ?

मद०—जी हाँ, सच नहीं, तो और क्या है। राजकुमारी ने पत्र लिखकर पहले मुझे दिया था। उसके बाद मैंने ही एक विश्वासी आदमी के हाथ आपके देश में भेज दिया था।

दूत—इसे हमारे महाराज का सौभाग्य कहना चाहिए। यह न होता, तो राजकुमारी क्या हमारे महाराज के ऊपर इतना रीझ जाती ? आहा, विधाता की कैसी अद्भुत लीला है ! कोई महामणि को पाने के लिये अँधेरी खान के भीतर जाने का कष्ट उठाता है, और कोई ऐसी महामणि को राह चलते पा जाता है। यह सब भाग्य से होता है। वह पत्र पाते ही महाराज की जो दशा हो गई है, सो मैं तुमसे क्या कहूँ ?

मद०—देखो भाई, तुम यहाँ ज़रा सावधानी से रहना। उस पत्र की बात यहाँ किसी से न कहना, नहीं तो राजकुमारी लज्जा के मारे अपनी जान ही दे देगी।

दूत—यह तुम क्या कहते हो भाई ? मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ ? ऐसी बात भी कहीं प्रकट की जाती है ?

मद०—वह देखिए, जयपुर का दूत धनदास आ रहा है। इसे तो आप अच्छी तरह जानते-पहचानते होंगे ?

दूत—ना, उससे-मुझसे विशेष परिचय नहीं है ।

मद०—महाशय, वह आपके राजा की ऐसी निंदा करता है कि आप सुन लें, तो आपे में न रहें।

दूत—हाँ ?

मद०—और इसकी इस बदमाशी से राजकुमारी को जैसा क्षोभ होता है, सो मैं आपसे क्या कहूँ। क्या आप उसे इस बदमाशी का कुछ मज़ा चखा सकते हैं ? अगर आप ऐसा कर सकें, तो बहुत अच्छा हो।

दूत—क्यों ? वह क्या कहता है ?

मद०—अजी वह जो कहता है, उसे ज़बान पर लाते भी मुझे लज्जा मालूम होती है। वह लोगों के सामने कहता फिरता है कि महाराज मानसिंह एक भ्रष्टा स्त्री के दत्तक पुत्र मात्र हैं। वह मारवाड़ की गद्दी के असली हक़दार भी नहीं हैं।

दूत—ऐं—क्या कहा ? उसकी इतनी मजाल ! क्या कहूँ, मैं एक तो ब्राह्मण, दूसरे बूढ़ा हूँ; नहीं तो इसी घड़ी उसका सिर काट डालता।

मद०—इस बात पर यों बिगड़ने से काम नहीं चलेगा। अगर आप ताने की बातों से इस दुष्ट को छका सकें, तो अच्छा है। नहीं तो इस तरह खुल्लमखुल्ला बिगड़कर अपने को ऊधमी साबित करना ठीक नहीं।

दूत—अच्छा, मैं राजमंत्री के पास जाता हूँ। उसके बाद जो सलाह होगी, सो किया जायगा। सियार के मुँह से सिंह की निंदा भी कहीं सुनी जा सकती है ? (प्रस्थान)

मद०—(स्वगत) वाह, कैसा गड़बड़झाला डाल दिया है ! ऐसा जाल फैलाया है कि सब उसमें फँस जायँगे। अब जगदीश्वर यह करें कि इस गड़बड़ से राजकुमारी कृष्णा का कुछ अमंगल न हो। अच्छा, यह भी तो बड़ा आश्चर्य है ! मैं एक वेश्या की सहचरी, वन की चिड़िया की तरह अपनी इच्छा के अधीन, संसार के पिंजड़े में कभी न बँधनेवाली होकर भी राजकुमारी को इतना प्यार क्यों करने लगी हूँ ? राजकुमारी के स्वभाव ने मेरे ऊपर कौन-सा जादू डाल दिया है ? सच है, लज्जा और सुशीलता ही नारी-जाति का अलंकार है। मैं और विलासवती, दोनों इस समय कैसी स्थिति में हैं, यह बात इसी समय मुझे अच्छी तरह देख पड़ रही है। लो, वह धनदास तो इधर ही आ रहा है।

(धनदास का प्रवेश)

मद०—महाशय, आप अच्छे तो हैं ?

धन०—अरे मदनमोहन, तुम हो ? अच्छे हो भाई ? भला वह अँगूठी तुमने कहाँ रख दी ?

मद०—जी, आपसे कहते लज्जा मालूम होती है। आप सुन लेंगे, तो नाराज़ होंगे।

धन०—इसके क्या माने ? मैं नाराज़ क्यों होऊँगा ?

मद०—अच्छा, तो सुनिए। इस नगर में मदनिका नाम की एक बहुत ही सुंदरी स्त्री है। उसी ने मुझसे वह अँगूठी ले ली है।

धन०—छी-छी ! ऐसा अमूल्य रत्न भी कोई वेश्या को दे देता है ? तुम तो बिलकुल नादान देख पड़ते हो जी ! इतनी थोड़ी अवस्था में ही ऐसी औरतों के पास जाना और बैठना-उठना क्या तुम्हें उचित जान पड़ता है ?

मद०—वाह साहब, अभी आप नाराज़ न होने का वादा कर चुके हैं, और फिर नाराज़ हो रहे हैं!

धन०—(स्वगत) बिगड़ना ठीक नहीं—शांति से अपना काम निकालना चाहिए। (प्रकट) हा:-हा:! मैं दिल्लगी कर रहा था जी। इसमें नाराज़ होने की बात ही क्या है? यह जानकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई कि तुम भी एक रसिक और सहृदय हो।—अच्छा भाई, तुम्हारी मदनिका कहाँ रहती है?

मद०—जी, उसका घर इस गढ़ के बाहर है।

धन०—(स्वगत) उस औरत के घर का पता लग जाय, तो फिर उसे कुछ देकर वह अँगूठा हथिया लेना कुछ कठिन न होगा। अगर वह ख़ुशी से सहज में न देगी, तो उसका भी उपाय किया जा सकेगा। (प्रकट) हाँ, कहाँ बताया भाई?

मद०—इस गढ़ के बाहर।

धन०—अच्छा, वह औरत देखने में तो अच्छी है?

मद०—जी हाँ, कुछ ऐसी बुरी नहीं है। महाशय, वह देखिए राजा मानसिंह का दूत मंत्री के साथ इधर ही आ रहा है।

धन०—हाँ।—अच्छा, मैंने जो तुमसे कहा था कि अंत:पुर में राजकुमारी के आगे हमारे महाराज जगतसिंह की तारीफ़ कर देना, सो कुछ किया या नहीं?

मद०—भला इसके लिए भी कुछ कहना-सुनना है? मैंने यह काम इतनी ख़ूबी के साथ किया है कि दुनिया भर में दूसरा कोई आदमी नहीं कर सकता था।

धन०—हाँ भाई, बेशक तुम्हारी मुझ पर बड़ी कृपा है।—अच्छा, हाँ, तो तुम्हारी मदनिका गढ़ के बाहर किस स्थान पर रहती है?

मद०—उसके लिये आपको इतनी उतावली क्यों है ? किसी दिन मैं आपसे उसकी मुलाक़ात करा दूँगा। बस, आप यही तो चाहते हैं ? अब मैं ठहर नहीं सकता—जाता हूँ। (स्वगत) देखूँ, भैया धनदास के ऊपर कैसी गुज़रती है !

(प्रस्थान)

धन०—(स्वगत) अँगूठी फिर न हथियाई, तो कुछ काम न किया। वह अँगूठी दस हज़ार रुपए से कम दाम की न होगी। वह क्या सहज में छोड़ी जा सकती है ? महाराज को फुसलाकर, कितना कौशल करके, वह अँगूठी प्राप्त की थी ! अगर यह छोकरा मुझे उस तरह लाचार न कर देता, तो मैं कभी मरने पर भी वह अँगूठी अपने से अलग न करता। अब ज़रा उस मदनिका के घर का पता लग जाय, तो फिर सब काम बन जाय। धनदास की अपनी चतुरता का घमंड है; वह क्या यों ही चूर हो जायगा ?

(मंत्री के साथ मारवाड़ के दूत का प्रवेश)

मंत्री—लीजिए, धनदासजी तो यहीं मौजूद हैं। (धनदास से) चलिए, राजसभा में उपस्थित होने का समय तो आ गया।

दूत०—क्यों मंत्रीजी, यही तो राजा जगतसिंह के दूत हैं न ?

मंत्री—जी हाँ।

दूत—(धनदास से) महाशय, हम दोनों ही अमूल्य स्त्री-रत्न की आशा से इस देश में आए हैं, इसलिये हम दोनों में पटैती होना असंभव नहीं। लेकिन इसी कारण हममें से कोई अगर दूसरे से बुरा व्यवहार करे, तो क्या वह उचित होगा ?

धन०—जी नहीं, वह कैसे उचित कहा जा सकता है ?

दूत—मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आप जो हर घड़ी हर आदमी से हमारे महाराज मरुस्थलाधीश्वर मानसिंह की निंदा किया करते हैं, सो क्या अच्छी बात है ?

धन०—(आश्चर्य के भाव से) आप कहते क्या हैं ? यह बात आपसे किसने कही ?

दूत—महाशय, हवा चले विना कहीं कोई पत्ता हिलता है ?

धन०—मुझे जान पड़ता है, आप गले पड़कर झगड़ा करना चाहते हैं।

दूत—आपसे झगड़ा करना व्यर्थ है। मगर इसमें कुछ संदेह नहीं कि आप अपने इस कुकर्म का दंड अवश्य पावेंगे। आपके राजा वेश्या के दास हैं। वह नृत्य-गीत प्रेमालाप आदि बातों में ही निपुण हैं। वह क्या कभी राजेंद्रकेसरी वीर मानसिंह की बराबरी का दावा कर सकते हैं, या वह राजकुमारी सुकुमारी कृष्णा के योग्य हैं ?

धन०—(मंत्री से) महाशय, आपने सुन लिया ? (कानों पर हाथ रखकर दूत से) क्या कहूँ, तुम वृद्ध ब्राह्मण हो, नहीं तो मैं आज तुमको जीता न छोड़ता।

दूत—क्या ? तुम क्या कर लेते ? इतनी मजाल ?

मंत्री—महाशयो, आप दोनों शांत होइए। आपको यह वृथा की ज़बानी लड़ाई बंद कर देनी चाहिए। इससे क्या मतलब निकलेगा ? ख़ासकर आप लोग सज्जन और भद्र पुरुष हैं। इस तरह 'तू-तू मैं-मैं' करने में आपकी भी बेइज़्ज़ती है।

धन०—जी हाँ, यह तो सच है। लेकिन आप ही न्याय कीजिए; इसमें मेरा क्या अपराध है। इन्होंने ही तो मुझे छेड़ा।

(बलेंद्रसिंह का प्रवेश)

बलेंद्र०—यह क्या महाशय, आप लोग अभी से लड़-झगड़ रहे हैं ! वही मसल है कि "सूत न कपास और कोरी से लठंलठा"।

दूत—जी नहीं, युद्ध क्यों शुरू होगा। मैं तो इन जयपुर के दूत महाशय को दो-एक हित की बातों का उपदेश कर रहा था।

बलेंद्र०—किन हित की बातों का उपदेश कर रहे थे ? आप यही उपदेश कर रहे थे न कि वह राजकुमारी की आशा छोड़कर अपने देश को चले जायँ—क्यों ? हाः-हाः !

धन०—हाः-हाः-हाः ! हाँ बस यही कहिए।

दूत—जी हाँ, मेरी समझ में तो इन्हें यही करना चाहिए। महाशय, मान बड़ी चीज़ है। इसलिये मनुष्य को मान की रक्षा के ऊपर सदा विशेष ध्यान रखना चाहिए।

बलेंद्र०—हाः-हाः, वाह साहब वाह ! महाशय, आप तो साक्षात् चाणक्य का अवतार देख पड़ते हैं। अच्छा महाशय, मैंने सुना है कि आपके मरुदेश में भगवती पृथ्वी बाँझ की प्रकृति धारण किए हुए हैं। तो फिर बताइए, आपके यहाँ का राज-काज कैसे चलता है ?

दूत—वीरवर, क्या कोई बाँझ स्त्री के साथ रहकर अपनी गृहस्थी नहीं चलाता ?

बलेंद्र०—हाः-हाः ! ख़ूब ! (धनदास से) अच्छा महाशय, आप अपने जयपुर-राज्य का तो वर्णन कीजिए।

धन०—जी, भला मेरी क्या ताक़त है, जो जयपुर-राज्य का या जयपुर के महाराज का वर्णन करूँ ? अगर मेरे हज़ार मुख होते, तो भी मैं जयपुर-राज्य की सुख-संपत्ति का संपूर्ण वर्णन न कर

सकता। महाशय, हमारे जयपुर का दूसरा नाम अंबर है। हमारा अंबर साक्षात् अंबर (आकाश) ही है। वहाँ की स्त्रियाँ तारागण के समान कांतिशाली और सुंदरी हैं। मेघमाला में जैसे बिजली और जलबिंदु होते हैं, वैसे ही वहाँ के राज-भांडार में हीरा-मोती आदि असंख्य अनमोल रत्न हैं। हमारे महाराज तो साक्षात् पूर्णचंद्र के समान हैं।

दूत—निःसंदेह वह चंद्रमा के समान कलंकी हैं।

बलेंद्र०—हाः-हाः ! धनदास, क्यों ? तुम क्या कहते हो ?

धन०—जी, इसके उत्तर में मैं क्या कहूँ ? उल्लू से कभी सूर्य का प्रकाश नहीं देखा जाता। और अगर भूख के मारे कभी रात को निकलता है, तो भी चंद्र की ओर अच्छी तरह देख नहीं सकता। मतलब यह कि तेजोमय वस्तुएँ सब उसकी आँखों को शूल-सी जान पड़ती हैं।

बलेंद्र०—हाः-हाः ! क्यों जी दूत—क्या कहते हो ?

(नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

मंत्री—यह लो, महाराज राजसभा में आ गए। चलो, हम लोग भी चलें।

(रक्षक का प्रवेश)

रक्षक—(हाथ जोड़कर) वीरवर, गणेशगंगाधर शास्त्री नाम का एक दूत महाराष्ट्र-सेना की छावनी से आया है, और नगर के सिंहद्वार पर उपस्थित है। आपकी क्या आज्ञा है ?

बलेंद्र०—दूत है ? महाराष्ट्र-सेना की छावनी से आया है ? अच्छा, उसे राजसभा में ले जाओ। मैं भी आता हूँ। (धनदास और मानसिंह के दूत से) चलिए, हम सब लोग राजसभा को चलें

(सबका प्रस्थान और मदनिका का फिर प्रवेश)

मद०—(आप-ही आप) अब तो मेरा काम पूरा हो गया। अब इस नगर में ठहरने की या देर करने की ज़रूरत ही क्या है? मेरे कौशल से राजनंदिनी राजा मानसिंह के ऊपर इतना रीझ गई हैं कि वह जगतसिंह का नाम सुनते ही एकदम जैसे जल उठती हैं। मेरा पत्र पाकर मानसिंह ने भी दूत भेज दिया है। बस, अब यहाँ रहकर क्या होगा? जाऊँगी ज़रूर, लेकिन राजनंदिनी को छोड़कर जाने को जी ही नहीं चाहता। आहा, ऐसा सुशील और सुंदरी लड़की दूसरी न होगी। हे परमेश्वर, मैं तो इस जंगल में आग लगा चली, मगर ऐसी कृपा कीजिए कि यह आग दावानल का रूप न रक्खे, और इस भोली-भाली मृगी का स्पर्श न करे। प्रभो, तुम ही कृपापूर्वक राजनंदिनी की रक्षा करना। चलूँ, मुझको दुष्ट धनदास से पहले ही जयपुर पहुँचना होगा। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर का राजबाग़

(तपस्विनी का प्रवेश)

तप०—(स्वगत) कैसा आश्चर्य है, मैंने भगवान् गोविंदराज के मंदिर में उस रात को कृष्णाकुमारी के संबंध में जो बुरा सपना देखा था, वह क्या सच ही होगा? राजा जगतसिंह और राजा मानसिंह, दोनों ने राजकुमारी के पाणिग्रहण की आशा से अपने-अपने दूत भेजे हैं। ये दोनों मत्त गजराज क्या युद्ध किए बिना निवृत्त होंगे? इन दोनों के भयंकर संघर्ष से इस देश की दुर्दशा हुए बिना नहीं रहेगी। हा! विधाता की यह कैसी विडंबना है।

(लंबी सांस छोड़कर) दीनबंधो, तुम ही सत्य हो। इधर देखती हूँ; राजनंदिनी कृष्णा का अनुराग दिन-दिन मानसिंह के ऊपर ही बढ़ता जाता है। चलूँ, यह बात रानी को अवश्य जता देनी चाहिए। (प्रस्थान)

(कृष्णकुमारी का प्रवेश)

कृष्णा०—(स्वगत) वह दूती क्या चिड़िया बनकर उड़ गई ? मैंने उसे ढूँढ़ लाने के लिये अनेक स्थानों में अनेक लोग भेजे; मगर उसका पता नहीं है। (लंबी सांस छोड़कर) कैसा आश्चर्य है! वह कौन-सा जादू डालकर, किस माया के बल से मुझे रिझा गई—मेरे चित्त में इतनी चंचलता पैदा कर गई ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता। हाय रे अबोध मन! तू क्यों वृथा इतना चंचल हो रहा है ? रात का देखा सपना भी कहीं सफल होता है ? वह दूती क्या मुझे धोखा दे गई ? मगर यही किस तरह मान लूँ ? उसके राजा का दूत तक आ गया है। (कुछ सोचकर) भगवती कपालकुंडला से अपने जी की बात कहकर क्या मैंने अच्छा किया ? लेकिन ऐसा रहस्य भी क्या अपने मन में छिपाकर रक्खा जा सकता है ? जैसे कीड़ा फूल की कली को काटकर बाहर निकल आता है, वैसे ही ऐसी बातें भी अवश्य बाहर निकल आती हैं।—वह भगवती कपाल-कुंडला मा के साथ बातें करती इधर ही आ रही हैं। शायद मेरी ही बातें कर रही हैं। हाय-हाय! छी-छी! कैसी लज्जा की बात है! मैंने अपने जी की बात जो तपस्विनीजी से कही है, उसे सुनकर मेरी माता क्या कहेंगी ? मैं किस तरह माता को अपना मुँह दिखाऊँगी ? मालूम नहीं, विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिखा है ? चलूँ, इस समय तो संगीत-शाला में भाग जाऊँ।

(प्रस्थान, और अहल्यादेवी के साथ तपस्विनी का फिर प्रवेश)

अह०—आप यह क्या कह रही हैं भगवती ? आपने क्या यह बात कृष्णा के मुँह से सुनी है ?

तप०—जी हाँ, उसने आप ही कही थी।

अह०—कैसा आश्चर्य है !

तप०—रानीजी, लज्जा युवती स्त्रियों के हृदय-द्वार का ताला होती है। उसे खोलना क्या सहज काम है ? आपसे क्या बताऊँ कि मैं कैसा और कितना कौशल करके इस काम में सफलता प्राप्त कर सकी हूँ।

अह०—इसी कारण कृष्णा का चेहरा इतना उदास देख पड़ता है। अच्छा भगवती, यह भी कुछ आपको मालूम हुआ है कि कृष्णा एकाएक राजा मानसिंह के ऊपर ऐसा क्यों रीझ गई ?

तप०—रानीजी, यह दैवी घटना है। वह जो सूर्यमुखी का फूल आप देख रही हैं, वह खिलते ही सूर्य की ओर मुख किये रहता है। लेकिन यह फूल सूर्य की ओर मुख क्यों रखता है, इसका कारण कोई नहीं बता सकता।

अह०—भगवती, सूर्यदेव की उज्वल कांति देखकर सूर्यमुखी उधर उन्मुखी होती है। मगर मेरी कृष्णा ने तो मानसिंह को कभी देखा भी नहीं।

तप०—देवी, मानसिक दृष्टि से क्या लोग नहीं देख पाते ? खासकर भगवान कामदेव की लीला और महिमा क्या आपसे छिपी हुई है ? दमयंती क्या अपने चर्म-चक्षुओं से देखकर राजा नल के ऊपर अनुरागिणी हुई थीं ? (चौंककर) आहा ! कैसी

मनोहर सुगंध है ! देवी, देखिये, यह सुगंध वायु के सहारे आकाश-मंडल में छा रही है। हमें नहीं मालूम कि यह सुगंध किस फूल से पैदा हुई है, तो भी अच्छी तरह यह विश्वास हो रहा है कि वह फूल अत्यंत सुंदर होगा, जिसकी यह सुगंध है। यह सुगंध जैसे चुपचाप हमारे आगे अपने जन्मदाता फूल की सुंदरता का बखान कर रही है। देवी, यशरूपी सुगंध की भी यही रीति जानिए। मारवाड़ के स्वामी महाराज मानसिंह भी एक महायशस्वी महाराज हैं।

अह०—जी हाँ यह तो ठीक है। (नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

तप०—देखिए रानीजी, राजनंदिनी ने संगीतशाला में गाना शुरू किया है। कृष्णा के मन का भाव उसके गीत से ही प्रकट हो जायगा। (नेपथ्य में गीत सुन पड़ता है)

बिना उसको देखे, नहीं जी को कल है;
झड़ी आँसुओं की लगी आजकल है।
बनी हू निशाना मदन के शरों का;
तड़पती हूँ घायल, यही इसका फल है।
न दिन-रात सुख है, सखी, दुख ये दिल का
सुनाऊँ किसे ? कौन ऐसा सरल है ?
मलय का पवन तीर-सा लग रहा है,
छलक पड़ता आँखों के प्याले से जल है।
जलाती है यह चाँदनी, क्या ग़ज़ब है !
रुलाती है कोयल, उगलती गरल है ॥

तप०—आहा ! ऋतुराज वसंत के उपस्थित होने पर क्या कोई कोयल को चुप रख सकता है ? वह अवश्य ही वनस्थली को प्रति-

ध्वनित करती हुई पंचम-स्वर में दिन-रात अपने मन का भाव प्रकट करती रहती है। वैसे ही जवानी के आने पर मनुष्य का हृदय भी चुप नहीं रह सकता।

अह०—भगवती, आपके श्रीमुख से यह समाचार जब से मैंने सुना है, तब से मेरा हृदय अत्यंत अस्थिर हो रहा है। हाय-हाय मुझ-सी अभागिनी और कौन होगी? बड़ी इच्छा थी कि बड़े उत्साह से धूम-धाम के साथ कृष्णा का ब्याह करूँगी। लेकिन विधि की विडंबना से वह सब विफल होते देख पड़ता है।
(रोती हैं)

तप०—क्यों रानीजी, रोती क्यों हो? तुम्हारी इच्छा पूर्ण क्यों न होगी?

अह०—भगवती, आप क्या यह समझती हैं कि हमारे महाराज मारवाड़ के राजा मानसिंह को बेटी देना स्वीकार कर लेंगे? एक तो राजा मानसिंह के साथ उनका वैसा सद्भाव नहीं है, दूसरे उनका दूत भी पीछे आया है। पहले जयपुर का दूत ही यहाँ आया है।

तप०—तो पहले आने से क्या होता है? जो गोतेख़ोर पहले गोता लगाता है, उसी को क्या सागर श्रेष्ठ मोती देता है? यह क्या बात है रानीजी? आपकी कन्या है। आप लोग जिसे चाहें उसी को अपनी कन्या दें। इसमें आगा-पीछा करने की क्या ज़रूरत है?

अह०—(लंबी साँस छोड़कर) भगवती, मैं क्या अपनी इच्छा के अधीन हूँ? ओहो, भगवती, तनिक इधर देखिए—(आगे बढ़कर) आओ, बेटी आओ।

(कृष्णकुमारी का फिर प्रवेश)

अह०—बेटी, तुम्हारा मुख आज इतना उदास क्यों है ?

कृष्ण०—नहीं माताजी, मैं तो उदास नहीं हूँ ।

अह०—यह क्या ? तुम रोती क्यों हो बेटी ?

कृष्ण०—(चुपचाप मा के गले से लिपटकर रोती हैं ।)

अह०—छी बेटी, छी ! तुम रोती क्यों हो ? तुम्हें ऐसा क्या दुःख है, क्या कमी है, जो यों रो रही हो ?

तप०—(स्वगत) यह नया व्रत है । व्रत के देवता को पाए बिना कैसे धैर्य धारण कर सकती है ?

अह०—बेटी, रोओ मत ।

कृष्ण०—माताजी, मैंने ऐसा क्या अपराध किया है, जो आप लोग मुझको पानी में बहा देने के लिये तैयार हैं ?

(रोती हैं)

अह०—मैं तुम पर वारी बेटी, तुमको हम लोग पानी में क्यों बहा देने लगे ? यह विधाता का विधान है—उसको सभी लोग मानते हैं । बेटी सदा अपने मा-बाप के घर नहीं रह सकती ।

(रोती हैं)

तप०—पुत्री, पक्षी का बच्चा क्या सदा उसी घोंसले में रहता है, जिसमें उसका जन्म होता है ? बेटी, अपनी मा को देखो, यह भी तो पिता का घर छोड़कर यहाँ आई हैं । तुमको भी उसी तरह दूसरे के घर जाना होगा । इसमें क्षोभ की क्या बात है ?

कृष्ण०—भगवती !—

(रोती हैं)

अह०—धीरज धरो बेटी । छी—काई रोता है ?

कृष्णा०—मुझे इतने दिन पालकर अब क्या त्याग दोगी मा ?
(रोती हैं)

तप०—रानीजी, वह देखिए, महाराज इधर ही आ रहे हैं। आप दोनों मा-बेटियों को यह दशा देखकर उन्हें भी दुःख होगा। आप एक काम करें, राजनंदिनी को साथ लेकर हट जायँ।

अह०—आओ बेटी, चलें। (दोनों का प्रस्थान)

तप०—(स्वगत) मैंने सोचा था कि रातों को जागने से, निराहार रहने से, कठोर तपस्या करने से संसार की माया-शृंखला से मुक्ति मिल जाती है। मगर कहाँ ? मुझे यह किसी तरह नहीं जान पड़ता कि मुझे वह मुक्ति मिल गई। ओह ! इस परिवार का शोक देखकर मेरी छाती जैसे फटने लगती है। (लंबी सांस छोड़कर) विधाता, तुमने इस मनुष्य-हृदय में जिन इंद्रियों के बीज बो दिए हैं, उन्हें निर्मूल करना मनुष्य की शक्ति से परे है। विलाप और आर्त की पुकार सुनकर योगींद्रों के हृदय भी चंचल हो उठते हैं।
(राना भीमसिंह का प्रवेश)

राना—भगवती, रानीजी तो अभी यहीं थीं न ?

तप०—जी हाँ, वह अभी यहीं थीं। शायद अभी फिर आती होंगी।

राना—मुझे उनसे कुछ विशेष बातें कहनी थीं। (टहलते हैं) जान पड़ता है, आपने भी सुना होगा, मारवाड़ के राजा मानसिंह ने भी कृष्णा के पाणि-ग्रहण की इच्छा से अपना दूत भेजा है।

तप०—जी हाँ, मैं सुन चुकी हूँ।

राना—(लंबी सांस छोड़कर) भगवती यह सब मेरे भाग्य ही का दोष है।

तप०—महाराज, आप यह क्या कह रहे हैं? इसमें बुराई ही क्या है? राजकुमारियों का पाणि-ग्रहण करने के लिये अनेकों राजा प्रार्थना किया ही करते हैं।

राना—भगवती, आप सदा तपस्या ही में समय बिताती हैं, इस कारण इस देश के लोगों का चरित्र अच्छी तरह नहीं जानतीं। इस विवाह के लिये न-जाने कौन अनर्थ उठ खड़ा हो!

(अहल्यादेवी का फिर प्रवेश)

राना—प्रिये, मुझे यह किसी तरह विश्वास नहीं होता कि तुम्हारी कृष्णा का विवाह संपन्न हो सकेगा। अवश्य कुछ-न-कुछ बखेड़ा उठ खड़ा होगा।

अह०—सो कैसे नाथ?

राना—क्या बताऊँ रानी? इस बार में महाराष्ट्र-देश के राजा मानसिंह का पक्ष लेकर कहते हैं कि—

तप०—रानाजी, तो फिर आप राजा मानसिंह से ही कृष्णा का ब्याह क्यों न कर दीजिये? वह भी तो कोई साधारण राजा नहीं हैं!

अह०—हृदयेश्वर, इस दासी की भी यही प्रार्थना है।

राना—कहती क्या हो देवी? राजा जगतसिंह मेरे परम आत्मीय हैं; उस पर पहले उन्हीं का दूत आया है। अब मैं क्या कहकर उन्हें इस मामले में निराश करूँ? (लंबी साँस छोड़कर) हाय विधाता! तुमने जो यह आग लगाई है, वह क्या बिना रक्तपात के बुझेगी?

अह०—प्राणेश्वर, महाराष्ट्र-पति इस मामले में क्यों हाथ डालते हैं? इसका क्या कारण है? वह तो अपने देश को लौट जाने के लिये तैयार थे न?

विलास०—अच्छा धनदास, तुमने महाराज के हाथ एक चित्रपट बीस हज़ार अशर्फ़ियाँ लेकर बेचा है?

धन०—(घबराकर) ऐं!—नहीं तो। यह—यह बात तुमसे किसने कही?

विलास०—चाहे जिसने कही, इसमें क्या? तुम यह बताओ, यह बात सच है न?

धन०—नहीं जी, नहीं! तुमसे किसी ने झूठ-मूठ यह बात कह दी है। यह बिलकुल चंडूखाने की गप है। तुम भी बिलकुल भोले हो। आज कल के ज़माने में इतनी बड़ी रक़म—बीस हज़ार अशर्फ़ियाँ—कौन किसे दे देगा!

विलास०—(धनदास का हाथ देखकर) और यह क्या है? यह बेशक़ीमत हीरे की अँगूठी तुमने कहाँ पाई?

धन०—(स्वगत) आः! इस चुड़ैल की नज़र तो बड़े ग़ज़ब की है! (प्रकट) कुछ नहीं जी, यह अंगूठी महाराज ने मुझे अपने पास रखने के लिये दी है।

विलास०—हूँ! नहीं तो!—अच्छा धनदास, बालू जैसे बरसात के पानी को पाकर उसे बड़े यत्न से रखता है, वैसे ही शायद तुम भी अगर महाराज की कोई वस्तु पाते हो, तो उसे बड़े यत्न से अपने पास रखते हो—क्यों?

धन०—क्या मालूम, तुम न-जाने क्या कह रही हो—मेरी समझ में कुछ नहीं आता।

विलास०—हाँ भाई, तुम्हारी समझ में क्या आवेगा? तुम ऐसा सीधा और भोला आदमी तो संसार-भर में ढूँढ़ने से नहीं मिल सकता। मैं यह कहती हूँ कि बालू जैसे पानी को पाते ही

एकदम सोख लेती है, वैसे ही तुम भी राजा साहब की कोई चीज़ पाते ही हज़म कर बैठते हो। खैर, वह बात जाने दो। मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। तुम महाराज के साथ उदयपुर की राजकुमारी का ब्याह कराने की कोशिश कर रहे हो?

धन०—(स्वगत) ग़ज़ब हो गया! इस डाइन ने यह बात कहाँ से सुन ली?

विलास०—क्यों जी दलाल भाई! चुप क्यों हो गए? जवाब दो—कुछ तो बोलो।

धन०—तुमसे ये सब झूठी बातें किसने कहीं?

विलास०—झूठी बातें—क्यों न? मुझे तुम्हारी धूर्तता का हाल अच्छी तरह मालूम हो गया है। तुम मुझसे जैसा व्यवहार करते और जैसी बातें कहते हो, उसकी खबर महाराज को मिल जाय, तो वह तुम्हें दलाली करने के लिये उदयपुर न भेजकर सीधे यमपुरी को रवाना कर दें—यह भी जानते हो?

धन०—हाँ भाई, अब तो ऐसी बातें करोगी ही। इसमें तुम्हारा क्या दोष है? यह समय का धर्म है—ज़माने का क़ुसूर है! यह कलिकाल है न! इस ज़माने में जिसका उपकार करो, वही गले पर छुरी फेरने को तैयार हो जाता है! भला ख़याल तो करो, तुम क्या थीं, और मैंने क्या बना दिया? इस समय जो तुम राजरानी बनी हुई हो, इंद्राणी का-सा सुख भोग रही हो, सो किसकी सहायता से? अब तुम मेरी चुग़ली न खाओगी, तो और कौन खायगा? तुम मेरी बुराई न करोगी, तो और कौन करेगा? तुम भी तो कलिकाल ही की एक औरत हो न!

विलास०—हाँ, मैं कलिकाल की औरत हूँ, लेकिन तुम तो

ख़ास कलियुग का अवतार हो। तुम मुझे पहले को, अपने एहसान की, बात याद दिलाते हो। लेकिन तुम ख़ुद पहले की बातों पर ग़ौर करके देखो। तुमने ही धन के लोभ से अपने मतलब को पूरा करने के लिये मेरा धर्म नष्ट कराया! मैं हालाँ कि एक दुखी ग़रीब की बेटी थी, लेकिन धर्म से भ्रष्ट नहीं थी। धनदास, धर्म का ख़याल करके सच कहो, किस दुष्ट चिड़ीमार ने इस चिड़िया को लासे में फँसाकर सोने के पिंजड़े में बन्द कर रक्खा है? (रोती है)

धन०—(स्वगत) अब बात बढ़ाना या इसे कुछ कहना अच्छा न होगा। यह मेरी जिन बातों को जानती है, उन्हें अगर राजा साहब सुन पावें, तो जान बचाना कठिन हो जाय। अब इसे मीठी बातों से फुसलाकर अपने अनुकूल बनाए रखना ही बुद्धिमानी का काम है। (प्रकट) मैं तो भाई तुम्हारे हित के सिवा बुराई कभी नहीं करता। फिर तुम मुझसे बेकार नाराज़ क्यों होती हो?

विलास०—महाराज के आगे राजकुमारी कृष्णा के ब्याह की चर्चा किसने चलाई?

धन०—सो मैं भला कैसे जान सकता हूँ?

विलास०—तुम कैसे जान सकते हो? तुम्हीं तो इस ब्याह दलाल हो। तुम न जानोगे, तो और कौन जानेगा?

धन०—हा-हा-हा! तुम औरतों को बुद्धि ऐसी ही होती है! अरे, मैं अगर इस ब्याह का दलाल बना हूँ, तो उसमें तुम्हारा ही उपकार है। तुम क्या यह समझती हो कि मैं उदयपुर जाऊँगा, तो यह ब्याह होने पायेगा? तुम इस बारे में निश्चित रहो। इसके बाद तुम्हें ख़ुद ही मालूम हो जायगा कि धनदास तुम्हारा कैसा हितचिंतक मित्र है।

(नेपथ्य में—अजी धनदास इस घर में हैं क्या ? महाराज ने उन्हें याद किया है ।)

धन०—अच्छा, मैं अब जाता हूँ। तुम मेरी ओर से अपने बारे में रत्ती-भर भी बुराई का संदेह मत करो। अगर महाराज यह ब्याह कर ही लेंगे, तो भी मेरी ज़िंदगी-भर तुम्हारे लिये कुछ चिंता नहीं है। मैं तुम्हें बड़े सुख में रक्खूँगा। तुम्हारी यह नई जवानी और रूप कुबेर का भांडार है। (स्वगत) अब यह रूप लेकर झख मारा कर। मैं तेरा सत्यानास करने जाता हूँ। (प्रस्थान)

विलास०—(लंबी सांस लेकर स्वगत) कह नहीं सकती, न-जाने क्या भाग्य में बदा है।—ओह, महाराज अभी तक नहीं आए। घड़ी-घड़ी पहाड़ हो रही है ! क्या राजा साहब आज नहीं ही आवेंगे ?

(मदनिका का प्रवेश)

मदनिका—क्यों बहन, मैंने जो कहा था, वह सच निकला कि नहीं ? अच्छा, तो अब क्या उपाय करोगी ? यह ब्याह हो जायगा, तो सदा के लिये तुम्हारे करम फूट जायँगे। तब राज-भवन में तुम्हारा रहना भी कठिन हो जायगा।

विलास०—तो फिर अब उपाय ही क्या है ? राजा साहब के विरुद्ध मैं कर ही क्या सकती हूँ ?

मदनिका—उपाय है क्यों नहीं ? तुम धीरज न छोड़ो; चिंता क्या है ? धनदास समझता है कि उसके माफ़िक़ चतुर आदमी दुनिया में दूसरा नहीं है। लेकिन यह उसकी ग़लती है। मैं देखूँगी, उसके कितनी बुद्धि है। आओ, चलो। इस दुष्ट को धोका देना मेरे लिये कुछ बड़ी बात नहीं है। मैं इसे देख लूँगी।

विलास०—अच्छा चल सखी। (दोनों का प्रस्थान)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान---उदयपुर का राज-भवन

(अहल्यादेवी और तपस्विनी का प्रवेश)

अहल्या—भगवती, मेरे दुःख की बात आप क्या पूछती हैं ? मैं जो जीती हूँ, सो केवल भगवान एकलिंग की कृपा और आपके आशीर्वाद से। ओह ! महाराज का विषाद-मलिन मुख देखकर मेरा हृदय जैसे टुकड़े-टुकड़े हो जाता है ! भगवती, हम लोगों ने ऐसा कौन पाप किया था, जो विधाता हमसे इतना प्रतिकूल है ?

तप०—रानीजी, आप इतनी अधीरता न दिखावें। संसार का नियम ही यह है। कभी सुख है, कभी शोक; कभी हर्ष है, कभी विषाद। लोग जिसे राज-भोग कहते हैं, वह केवल सुख का भोग नहीं है। देखिए, जो लोग समुद्र-मार्ग से यात्रा करते हैं, उन्हें सदा शांत और अनुकूल वायु ही नहीं मिलती; कितने ही तूफ़ान, आँधी और पानी समय-समय पर उनकी यात्रा में विघ्न डालते हैं। मगर यात्री को धैर्य के साथ उन सबका सामना करना पड़ता है।

अहल्या—(लंबी साँस छोड़कर) भगवती, वह तूफ़ान, जो हमारे जीवन की यात्रा में, समय के सागर में, उठ रहा है, बड़ा ही भयंकर है। आप अगर हम लोगों की दुर्दशा का हाल सुनें, तो आप जैसे विरक्त महापुरुषों का हृदय भी चंचल हो उठे।

तप०—रानी, मैं बहुत दिनों से संसार से नाता तोड़कर मन को भगवान के चरणों में लगा चुकी हूँ। इस संसार-सागर का कल्लोल-कोलाहल बहुत कम मेरे कानों तक पहुँचता है।

अहल्या—(बहुत ही कातर भाव से) भगवती, महाराज का उदास मुख देखती हूँ, तो यह अधम जीवन रखने को जी नहीं चाहता। हाय! वह देव-मूर्ति चिंता के मारे जैसे बिलकुल मिट्टी हो गई है! विधाता का यह कैसा कोप है भगवती?

तप०—रानी, आग में तपने से सोने की चमक और बढ़ जाती है। आप लोगों की यह दशा आपके कुल का गौरव बढ़ाने के सिवा घटावेगी नहीं। देखो, धर्मपुत्र युधिष्ठिर और मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्र, या इनसे भी पहले राजा हरिश्चंद्र ने कैसे-कैसे कष्ट सहे हैं? अपने कुल के उज्ज्वल रत्न हिंदू सूर्य राना प्रतापसिंह ही को देखो। उन्होंने क्या कुछ कम कष्ट झेले हैं?

अहल्या—भगवती, वे महापुरुष थे। मुझे तो यह कष्ट असह्य हो रहा है। जान पड़ता है, इस राज-भोग की अपेक्षा जन्म-भर वन में रहना लाखगुना अच्छा है। अगर राजा का पद सुखदायक होता, तो धर्मराज युधिष्ठिर इतने कष्ट से मिले हुए राज्य को छोड़कर महायात्रा क्यों करते?

तप०—रानी, आपका कहना ठीक है। मगर धीरज धरो। विधाता के विधान को कोई अन्यथा नहीं कर सकता।—अच्छा मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। आप लोगों ने राजकुमारी के ब्याह के बारे में क्या निश्चय किया है?

अहल्या—क्या निश्चय किया जाय? महाराज को क्या इन बातों का ध्यान है? उन्हें और ही चिंताएँ घेरे रहती हैं। (लंबी

साँस लेकर) भगवती, और क्या आपसे—कहूँ—मुझे भी इतना समय नहीं मिलता कि महाराज के आगे यह प्रसंग उठाऊँ ।

तप०—यह कैसी बात है ? रानीजी, इस काम में ढिलाई करना तो किसी तरह उचित नहीं । सुकुमारी राजकुमारी का यौवन-काल उपस्थित है । इस समय उसका ब्याह न किया जायगा, तो कब किया जायगा ?—वह लो, महाराज तो इधर ही आ रहे हैं ।

अह०—भगवती, तनिक महाराज के मुख की ओर देखिए । विधाता, इन हिंदू-कुल-सूर्य को क्या तुम कभी चिंता-राहु के ग्रास से मुक्त नहीं करोगे ? हाय, मैं महाराज की यह व्यथा कैसे देख सकती हूँ । (रोती हैं)

तप०—शांत होओ रानी । आपको इस समय इस तरह अधीर न होना चाहिए । महाराज आपकी यह दशा देखकर कितने दुखी होंगे, यह तो सोचो ।

अह०—भगवती, महाराज की यह उदासी मुझसे नहीं देखी जाती । क्या करूँ ? (रोती हैं)

तप०—(स्वगत) आहा ! पति का दुःख देखकर पतिव्रता स्त्री से कैसे रहा जा सकता है ? (प्रकट) रानीजी, आप तनिक इस समय हट जाइए । कुछ शांत होने पर महाराज से मिलिएगा । (हाथ पकड़कर) आइए, हम दोनों तनिक घूम आवें ।

(प्रस्थान)

(भृत्य के साथ भीमसिंह का प्रवेश)

भीम०—रामसिंह—

भृत्य—महाराज !

भीम०—ये पत्र सत्यदास को दे आओ, और उनसे कहो, इन सब पत्रों का उत्तर आज ही चला जाय।

भृत्य—जो आज्ञा महाराज।

भीम०—जो कुछ उत्तर देना होगा, वह संक्षेप में मैंने हर एक पत्र की पीठ पर लिख दिया है।

भृत्य—जो आज्ञा। (भृत्य का प्रस्थान)

भीम०—हे विधाता! इसी को क्या लोग राज-भोग कहते हैं?

(तपस्विनी का प्रवेश)

तप०—महाराज की बड़ी आयु हो।

भीम०—(प्रणाम करके) भगवती, बहुत दिनों के बाद आपके चरणारविंद देखकर इतनी प्रसन्नता हुई है कि मैं क्या कहूँ! रानी कहाँ हैं? वह क्यों नहीं देख पड़तीं?

तप०—जी, वह अभी तो यहीं थीं, शायद फिर आती ही होंगी।

भीम०—भगवती, आप इतने दिनों तक कहाँ थीं?

तप०—जी, मैं तीर्थ-यात्रा करने चली गई थी। महाराज, सब कुशल-मंगल तो है न?

भीम०—आपसे तो कुछ छिपा नहीं है। भगवान एकलिंग के प्रसाद और आपके आशीर्वाद से राजलक्ष्मी अभी तक राजगृह में बनी हुई हैं। लेकिन आगे चलकर रहेंगी या नहीं, यह कहना कठिन है।

तप०—महाराज, आप ऐसी बात अपने मुँह से न कहें। गंगा क्या कभी शैलराज का आश्रय छोड़ सकती हैं? इस राज-भवन में त्रेतायुग से राजलक्ष्मी का निवास है। वह शरत्काल

के चंद्र की तरह वारंवार विपत्ति के बादलों से छुटकारा पाकर पृथ्वीमंडल को अपनी शोभा से शोभित कर रही हैं। यह बड़ा और नामी राजवंश क्या कभी श्री-भ्रष्ट हो सकता है? आप ऐसे विचार को मन में भी न लावें।

(रानी का फिर प्रवेश)

तप०—रानीजी, आइए, आइए।

अह०—(राजा का हाथ अपने हाथ में लेकर) महाराज, आप इतने समय के बाद एक बार अंतःपुर में पधारे, इसे भी यह दासी अपना परम सौभाग्य समझती है।

भीम०—देवी, मैं तुम्हारे निकट इतना अपराधी हूँ कि लज्जा के मारे आँख सामने नहीं होती। लेकिन क्या करूँ, मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध विवश होकर ऐसा करना पड़ता है। आओ प्रिये, बैठ जाओ। (तपस्विनी से) भगवती, आप भी आसन पर विराजमान हों।

(सबका बैठना और भृत्य का फिर प्रवेश)

भृत्य—धर्मावतार, मंत्रीजी ने यह पत्र महाराज की सेवा में भेजा है।

भीम०—देखें। (पत्र पढ़कर) खैर, जान पड़ता है, इतने दिनों पर कुछ समय के लिये यह राज्य निरापद हुआ।

(भृत्य का प्रस्थान)

अह०—नाथ, यह पत्र किसका है? क्या यह दासी भी सुन सकती है?

भीम०—मरहठों के राजा के साथ एक प्रकार से मेल होनेवाला है। उन्हीं का यह पत्र है। इस पत्र में उन्होंने स्वीकार

किया है कि तीस लाख रुपये अगर उनको दिए जायँ, तो वह अपने देश को लौट जायँगे। देवी, इस संवाद से राजा दुर्योधन की तरह मुझे हर्ष और विषाद, दोनों हुए। नदी की बढ़िया के समान शत्रु सेना ने इस देश को प्लावित कर रक्खा था। वह सेना इस राजभूमि को छोड़कर लौट जायगी यह बेशक हर्ष की बात है। लेकिन किस तरह छोड़कर जायगी, इसका खयाल करते ही मेरा हृदय विषाद के अंधकार से परिपूर्ण हो जाता है; घड़ी-भर भी यह दीन जीवन धारण करने को जी नहीं चाहता। (लंबी साँस छोड़कर) हाय! मैं भुवन-विख्यात महाराज शैलराज का वंशधर हूँ। मुझे एक दुष्ट लोभी भूपाल से दबकर राज्य की रक्षा करनी पड़ी! यह क्या कम दुःख की बात है? धिक्कार है मुझे! इससे बढ़कर शोचनीय अपमान और क्या हो सकता है?

तप०—महाराज, आप तो सब जानते हैं। द्वापर में चंद्रवंश के सूर्य महाराज युधिष्ठिर को राजा विराट् के घर अज्ञातरूप से, उनके अनुगत सभासद के रूप से, रहना पड़ा। सूर्य-वंश-चूड़ामणि नल को भी एक दूसरे राजा का सारथी बनना पड़ा। रामचंद्र को रावण से लांछित होना पड़ा। ये सब उसी विधाता की अपरंपार लीलाएँ हैं।

भीम०—जी हाँ, इसमें संदेह क्या है?

अह०—यह सब भगवान् एकलिंग का अनुग्रह है कि मरहठा राजा अपनी सेना लेकर लौट जाने को तैयार है।

भीम०—(हँसकर) देवी, तुम क्या यह समझती हो कि वह नराधम हमारे राज्य को सदा के लिये छोड़े जाता है? बिल्ली एक बार जहाँ गोरस की गंध पा जाती है, उस जगह को छोड़कर

जाना नहीं चाहती, बार-बार वहीं के चक्कर काटती है। वैसे ही धन की कमी होने पर फिर वह दुष्ट आवेगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

तप०—महाराज, भूत-भविष्य-वर्तमान के स्वामी जगदीश्वर ही भविष्य में आपकी रक्षा करेंगे। उसके लिये आप चिंता न करें।

अह०—महाराज, दासी का एक निवेदन यह है कि यह चिंता तो एक तरह से दूर हो गई; अब कुमारी कृष्णा के ब्याह का प्रबंध शीघ्र होना चाहिए।

भीम०—उसके लिये इतनी उतावली की क्या ज़रूरत है?

अह०—नाथ, अब तो कुमारी कृष्णा की अवस्था शीघ्र ही ब्याह कर देने योग्य हो गई है। अधिक सयानेपन तक लड़की कहीं कौंरी रक्खी जा सकती है?

भीम०—(नेपथ्य की ओर देखकर) यह क्या यह मनोहर वंशी कौन बजा रहा है?

अह०—(सुनकर) यह आपकी कृष्णा की ही वंशी है। वही अपनी सखियों के साथ बाग़ में क्रीड़ा कर रही है।

भीम०—रानी, इस काम में जल्दी करने से काम नहीं चलेगा। मैं किसी समय विचार करूँगा।

अह०—नाथ, क्षमा कीजिएगा। क्या आप यह चाहते हैं कि कोई पाजी यवन आकर इस कमलिनी को इस राजभवन के सरोवर से ले जाय?

भीम०—तुम यह क्या कहती हो रानी?

अह०—महाराज, दिल्ली का बादशाह या और कोई यवन-राजा यदि जनरव-रूप वायु के द्वारा इस कमलिनी की सुगंध

आ जायगा, तो क्या घोर अनर्थ न उपस्थित हो जायगा? अपने पूर्वपुरुष राना भीमसेन की पत्नी परम सुंदरी पद्मिनी का वृत्तांत क्या आप भूल गए?

(नेपथ्य में दूर पर बंशी की ध्वनि और गीत सुन पड़ता है)

सुनाई मोहन मुरली-तान।
मैं अनुमान करूं प्रिय सजनी, गया सभी कुल-मान;
सुन सुर मधुर हृदय हठ पकड़े, रहे न धीरज-ज्ञान।
साध सदा साँवले रूप को देखें मृदु मुसकान;
भय कुल-कानि, लाज गुरु-जन की उड़ी कपूर-समान।
शीघ्र मिलन को चंचल मेरा चित्त, न माने आन;
देख नहीं पड़ता कुछ उसका यथायोग्य सुविधान।

तप०—वाह वाह! जैसे अमृत की वर्षा हो रही है। महाराज हम तपस्वी लोग कभी-कभी तपोवन में ऐसा सुंदर स्वर आकाश-मार्ग में सुना करते हैं। इसीसे मेरी यह धारणा थी कि ऐसा स्वर केवल देवतों की स्त्रियों का ही हो सकता है।

भीम०—बेशक कृष्णा के स्वर में एक आकर्षणी शक्ति है भगवती।—रानाजी, कृष्णा की अवस्था अब कितनी हुई?

अह०—सो क्या नाथ, आप नहीं जानते? कृष्णा को यह पंद्रहवाँ वर्ष लगा है।

तप०—महाराज, इस कलिकाल में स्वयंवर की चाल उठ-सी गई है; नहीं तो आपकी कुमारी कृष्णा को प्राप्त करने के लोभ से हज़ारों राजा और राजकुमार आकर उपस्थित हो चुके होते।

भीम०—(लंबी साँस छोड़कर) भगवती, इस भारत-भूमि का वह सौभाग्य और वह श्री अब कहाँ? इस देश के प्राचीन वृत्तांतों

की याद आने पर यह विश्वास ही नहीं होता कि हम भी मनुष्य हैं, या उन्हीं महामहिम भारतवासियों की संतान हैं। कह नहीं सकता, जगदीश्वर क्यों हम लोगों के प्रतिकूल हैं। हाय! जैसे कोई खारी पानी की लहर किसी मीठे जल की नदी में प्रवेश करके उसके स्वाद को नष्ट कर दे, वैसे ही इन दुष्ट यवनों के दल-के-दल इस देश में प्रवेश कर यहाँ का सर्वनाश कर रहे हैं। भगवती, हम लोग क्या फिर कभी इस आपत्ति से छुटकारा पा सकेंगे?

अह०—हम लोगों के दुर्भाग्य से अब वह समय कहाँ! इस समय स्वयंवर का समारोह तो दूर रहा, जिस राजा के घर सुंदरी कन्या जन्म लेती है, उस कुल को अपने मान की रक्षा करना कठिन हो जाता है।

तप०—सच कहती हो रानीजी। यह सब उसी प्रभु की इच्छा है, जिसकी मर्जी के बिना एक पत्ता तक नहीं हिलता। किंतु महाराज, भारतवर्ष की यह दशा सदा नहीं बनी रहेगी। जिन पुरुषोत्तम ने सागर में मग्न हुई पृथ्वी को वाराह-रूप रखकर उबारा है वह क्या इस पुण्य-भूमि को सदा के लिये बिसरा देंगे? अभी चंद्रमा और सूर्य ठीक समय पर ठीक स्थान में उदय होते हैं अभी धर्म का एक चरण बचा हुआ है।

भीम०—जो भाग्य में बदा है, वही होगा। रानीजी, कृष्णा को ज़रा यहाँ बुलाओ तो। बहुत समय से मैंने उसे अच्छी तरह देखा नहीं।

अह०—मैं अभी बुलाए लाती हूँ।

तप०—रानीजी, आपके जाने की क्या आवश्यकता है—मैं ही बुलाए लाती हूँ।

अह०—(उठकर) यह क्या आप कहती हैं भगवती ? आप क्यों जायँगी—मैं ही जाती हूँ।

भीम०—(नेपथ्य की ओर देखकर) किसी के भी जाने की ज़रूरत नहीं है। वह देखो, कृष्णा आप ही इस ओर आ रही है।

तप०—(कृष्णा की ओर देखकर) कन्या साक्षात् लक्ष्मी का स्वरूप है। महाराज और महारानी के बड़े पुण्य हैं, जो ऐसी त्रिलोक-सुंदरी कन्या पाई है! सैकड़ों धन्यवाद हैं उस जगदीश्वर को, जिसने ऐसी संतान देकर आपको सुखी बनाया है। महारानी, आपकी कन्या साक्षात् पार्वती है।

अह०—(बैठकर) भगवती, बस, यही आशीर्वाद दीजिए कि हमारी कृष्णा सुपात्र के साथ ब्याही जाय, और सुखी रहे। कृष्णा के रूप-लावण्य, सुशीलता, विद्या, बुद्धि आदि सद्गुण देखकर मेरे मन में न-जाने कितने और कैसे भाव उत्पन्न हुआ करते हैं। (कृष्णकुमारी का प्रवेश)

भीम०—आओ बेटी।

अह०—कृष्णा, क्या तुमने भगवती कपाल-कुंडला को नहीं पहचाना ?

कृष्णा०—भगवती के श्रीचरण बहुत दिनों से नहीं देखे, इसी से पहले एकाएक मैं नहीं पहचान सकी। (तपस्विनी को प्रणाम करके) भगवती, इस दासी का अपराध क्षमा कीजिएगा।

तप०—बेटी, सदा सुखी रहो। (रानी से) रानीजी, जब मैं यहाँ से तीर्थ-यात्रा को गई थी, तब यह कनक-कमल केवल कलीमात्र था।

भीम०—बैठो बेटी, बैठो। तुम बाग़ में क्या कर रही थीं कृष्णा ?

कृष्ण०—(बैठकर) पिताजी, मैं फूलों के पेड़ों में पानी डालकर उसी गीत का अभ्यास कर रही थी, जो शिक्षक महाशय ने आज नया सिखाया है। पिताजी, आप बहुत दिनों से मेरे बाग़ में नहीं पधारे; आज ज़रा चलिए। चलकर देखिए, वहाँ कितनी तरह के फूल फूले हैं। देखकर अवश्य ही आपको बड़ा आनंद होगा।

अह०—यह कौन फूल है बेटी, जो तुम हाथ में लिए हो ?

कृष्ण०—माताजी, यह गुलाब है। अपने बाग़ से आप ही के लिये लेती आई हूँ। (माता को फूल देती है)

भीम०—पहले हिंदुस्तान में यह सुंदर फूल नहीं था। जिसके विष से आज भारत-भूमि जल रही है, उसी विषधर के साथ यह मणि भी इस देश में आई है। (लंबी साँस छोड़कर) दुष्ट यवन ही यह पुष्प-रत्न इस देश में लाए हैं। (दूर पर नगाड़ा बजता है)

सब लोग—(चौंककर) यह क्या ?

भीम०—रामसिंह !

(नेपथ्य में — आया महाराज।) (भृत्य का प्रवेश)

भीम०—देखो तो यह नगाड़ा कैसा बज रहा है ?

भृत्य—जो आज्ञा महाराज। (प्रस्थान)

भीम०—अब यह कौन विपत्ति उपस्थित हुई ! महाराष्ट्र-पति संधि तोड़कर क्या फिर युद्ध करना चाहता है ? (उठकर) आः ! इस भारत-भूमि की इस समय ऐसी ही दुर्दशा हो रही है। मैंने सुना है कि किसी किसी सागर में सदा तूफ़ान बना रहता है। क्या इस देश की भी वही दशा रहेगी ? हाय !—(भृत्य का फिर प्रवेश)

भीम०—क्या ख़बर है ?

भृत्य—महाराज, सब कुशल है। जयपुर के महाराज जगतसिंह ने किसी विशेष कार्य के लिये महाराज की सेवा में अपना दूत भेजा है। उसी के साथ यह नगाड़ा बज रहा है।

भीम०—अच्छी बात है। मैं तो समझा था कि फिर विपत्ति का सामना करना पड़ा। जयपुर के महाराज मेरे शुभचिंतक और आत्मीय हैं। ईश्वर करे, उन्होंने किसी विपत्ति में पड़कर मेरे पास दूत न भेजा हो। (तपस्विनी से) भगवती, मुझे फिर राजसभा में जाना पड़ा। कुछ देर तक आपकी सेवा नहीं कर सका, क्षमा कीजिएगा। (रानी से) जाता हूँ।

अह०—(लंबी साँस छोड़कर) जीवन-नाथ, इस दासी का ऐसा दुर्भाग्य है कि क्षण-भर भी चरणों की सेवा न कर सकी!

भीम०—देवी, इसके लिये तुम्हारा दुःख करना वृथा है। लोग जिसे नर-पति कहते हैं, उसके बारे में विशेष रूप से विवेचना करके देखो, तो वह नर-दास के सिवा और कुछ नहीं है। जिसे सारी प्रजा को संतुष्ट करना है, जिसके ऊपर सारी प्रजा को सुखी रखने का भार है, वह क्या दम-भर भी विश्राम कर सकता है?

(भृत्य के साथ राजा का प्रस्थान)

अह०—चलिए भगवती, हम भी चलें। (कृष्णकुमारी से) आओ बेटी, हम ज़रा तुम्हारे बाग़ की सैर कर आवें।

कृष्ण०—चलिए माताजी, पिताजी तो नहीं गए, आप और भगवती ही चलकर देख आवें।

(सबका प्रस्थान)

"अब कौन कह सकता है कि मैं मदनिका हूँ ?"

(पृष्ठ ४१)

दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर की सड़क

(पुरुष के वेश में मदनिका का प्रवेश)

मदनिका—(आप-ही-आप) हा:-हा:-हा: ! तुम्हारा नाम क्या है भाई ? मेरा नाम है मदनमोहन। हा:-हा: ! ना-ना, इस तरह हँसने से काम चौपट हो जायगा। (अपने को देखकर) खूब ! बहुत ही ठीक रूप आया है। अब कौन कह सकता है कि मैं विलासवती की सखी मदनिका हूँ ? हा-हा-हा ! दुत तेरे की ! मैं अपने मन में यह सोचती हूँ कि हँसूँगी नहीं, लेकिन हँसी रुकती ही नहीं। जब इतना बड़ा धूर्त धनदास नहीं पहचान सका कि मैं मर्द नहीं औरत हूँ, तब और कौन पहचान सकता है ? अब किसी का डर नहीं है। विलासवती की यही इच्छा है कि यह ब्याह किसी तरह न होने पावे। मैं अगर इस काम में सफलता पा गई, तो भैया धनदास के मुँह में एकदम कालिख पुत जायगी। देखें क्या होता है। यहाँ तक तो मैं बेखटके, बे-रोक-टोक पहुँच ही गई हूँ। राजा मानसिंह को एक पत्र भी कृष्णकुमारी के नाम से लिखकर भिजवा चुकी हूँ। वह पत्र ऐसे कौशल से लिखा है कि मानसिंह उसे पढ़ते ही कृष्णकुमारी को पाने के लिये व्याकुल हो उठेंगे। वह समझेंगे, कृष्णकुमारी उन पर रीझ गई है। देवी रुक्मिणी ने शिशुपाल के हाथ से अपने को बचाने के लिये यदुपति कृष्ण को जैसा प्रार्थनापूर्ण पत्र लिखा था, वैसा ही पत्र मैंने भी कृष्णकुमारी के नाम से मानसिंह के पास भेज दिया है। अब देखना यह है कि हमारे शिशुपाल के भाग्य में क्या बदा है।—वह लो, धनदास तो मंत्री के साथ इधर ही आ रहा है। मैंने राना भीमसिंह के

मंत्री के भी कान भर दिए हैं। जगतसिंह एक विलासवती नाम की वेश्या पर अत्यंत आसक्त हैं, यह कहकर मैंने मंत्री का मन एकदम जगतसिंह से विमुख कर दिया है। देखना चाहिए, इन दोनों में क्या बातचीत होती है। (आड़ में हो जाती है)

(धनदास और मंत्री का प्रवेश)

धन०—मंत्रीजी, जवानी में लोग क्या नहीं करते? हमारे महाराज अगर त्रिभुवनविजयी कामदेव के वश होकर कभी-कभी ऐसा करते हों, तो कुछ असंभव नहीं। महाराज की अवस्था अभी थोड़ी ही है। इसके सिवा बड़े घरों के ऐसे साधारण दोषों पर दृष्टि नहीं डाली जाती। बड़े घरों में क्या नहीं होता?

मंत्री—जी हाँ, आपका कहना ठीक है। लेकिन मैंने सुना है, जयपुर के महाराज विलासवती नाम की वेश्या के इतने वश में हैं—

धन०—(बात काटकर) हा:-हा:! आप कहते क्या हैं महाशय? भ्रमर कहीं किसी फूल के वश होता है?

मंत्री—महाशय, मैंने सुना है, विलासवती कोई साधारण फूल नहीं है।

धन०—(स्वगत) इसमें तो शक नहीं। नहीं तो क्या मेरा मन उसके ऊपर चलायमान हो सकता था? (प्रकट) जी, आपसे यह बात किसने कही? वह एक साधारण स्त्री है। आज है, कल नहीं।

मंत्री—महाशय, राजकुमारी कृष्णा रानाजी का जीवन-सर्वस्व हैं। मुझे तो किसी तरह विश्वास नहीं होता कि रानाजी यह बात सुनकर भी किसी तरह राजा जगतसिंह को अपनी कन्या देना स्वीकार करेंगे।

धन०—कैसा सर्वनाश है ! मंत्रीजी, क्या यह बात रानाजी के कानों तक पहुँचाना उचित होगा ?

मंत्री—जी हाँ, यह तो आपका कहना ठीक है। मगर जन-रव को कौन रोक सकता है ? जब इस ब्याह की बात प्रकट हो जायगी, तब हज़ारों आदमी हज़ारों तरह की बातें कहेंगे। किसी-न-किसी तरह रानाजी के कानों तक इस बात का पहुँच जाना सर्वथा संभव है।

धन०—मंत्रीजी, चंद्रमा में कलंक अवश्य है, लेकिन उसके कारण कोई चंद्रमा की अवहेला नहीं करता।

मंत्री—यह सच है, लेकिन यह तो वैसा कलंक नहीं है, यह तो राहु का ग्रास है। इससे आपके राजा की श्री और कीर्ति का बिलकुल मिट जाना ही संभव है।

धन०—(स्वगत) यह तो बेढब मामला है ! मगर मेरी क्या हानि है ? बल्कि उपकार ही है। महाराज अगर उस चिड़िया को खिड़की खोलकर पिंजड़े से उड़ा दें, तो फिर क्या कहना ! मैं तो फंदा लगाए उसकी ताक में बैठा ही हूँ।

मंत्री—महाशय, आप तो चुप हो गए !

धन०—जी नहीं। मैं यह सोच रहा हूँ कि इस तुच्छ बात को अगर आप इतना महत्व देते हैं, तो मैं यहाँ से महाराज को एक पत्र लिख दूँ कि पत्र पाते ही वह उस दुष्टा स्त्री को अपने राज्य से निकाल दें। तब तो शायद आप लोगों को महाराज के साथ राजकुमारी का ब्याह करने में कुछ आपत्ति न होगी ?

मंत्री—वाह, इससे बढ़कर अच्छी सलाह और क्या हो सकती है ? महाराज जगतसिंह अगर यह काम करें, तो फिर ब्याह में कोई बाधा न रह जायगी।

धन०—करेंगे क्यों नहीं ? ताँबे के बदले सोना कौन न लेना चाहेगा ?

मंत्री—तो फिर अब मैं बिदा होता हूँ । आप भी डेरे पर जाकर विश्राम करें । महाराज से शाम को भेंट होगी। (प्रस्थान)

धन०—(स्वगत) हमारे महाराज की करतूत दूर-दूर तक प्रसिद्ध देख पड़ती है । अच्छा इस जन-रव को एकदम नीरव कर देने की क्या कोई राह नहीं है ? मगर यह हो ही कैसे सकता है ? किस-किसकी ज़बान पकड़ी जा सकती है ? जन-रव की गति जल के प्रवाह के समान है। पहले पहाड़ी झरने से जल निकलकर एक जलाशय की सृष्टि करता है। फिर उस जलाशय से प्रवाह निकलकर क्रमशः वेग धारण करता है। जलाशय नदी के रूप से बढ़ता हुआ सागर बन जाता है । जन-रव का भी यही हाल है । (मदनिका को दूर पर देखकर) आहाहा ! यह सुंदर बालक कौन है ? इसे क्या मैंने और भी कहीं देखा है ? (प्रकट) अजी ए सुंदर बालक, ज़रा इधर तो आओ ।

मदनिका—(आगे बढ़कर) क्या आज्ञा है महाशय ?

धन०—तुम्हारा नाम क्या है भाई ?

मद०—मेरा नाम है मदनमोहन ।

धन०—वाह, जान पड़ता है, तुम्हारे मा-बाप ने तुम्हारा रूप देखकर ही यह नाम रक्खा है । तुम रहते कहाँ हो भाई ?

मद०—मैं रानाजी के महल में रहता हूँ । वहीं से पलता और लिखता-पढ़ता भी हूँ ।

धन०—हूँ । मोती पाने की आशा से ही लोग समुद्र में गोता लगाते हैं । राजमहल धन-रत्न की खान होता है । तुम राज-

महल में रहकर क्या केवल लिखते-पढ़ते ही हो ? क्योंजी, क्या तुम्हारे गाँव-घर में कोई पाठशाला नहीं थी ? अच्छा, एक बात बताओ, तुमने क्या राजकुमारी कृष्णा को देखा है ?

मद०—जी हाँ, देखा क्यों नहीं है ? चंद्रलोक के रहनेवालों के लिये क्या अमृत देखना बाक़ी रह जाता है ?

धन०—वाह-वाह भाई । अच्छा बताओ, तुम्हारी राजकुमारी देखने में कैसी हैं ?

मद०—उस रूप का वर्णन करना तो मेरी शक्ति से परे है । मगर हाँ, विलासवती के सामने वह कोई चीज़ नहीं हैं ।

धन०—ऐं—किसके सामने ?

मद०—क्या आप कुछ ऊँचा सुनते हैं ? विलासवती—विलासवती ! सुन लिया !

धन०—ऐं—विलासवती कौन ?

मद०—हा:-हा: ! विलासवती कौन है, सो क्या आप नहीं जानते ? हा:-हा:-हा !

धन०—(स्वगत) ग़ज़ब हो गया ! उसका नाम इस छोकरे ने कहाँ से सुन पाया ?

मद०—एँ:, आप मुझसे क्यों छिपाते हैं ? अभी जो कुछ मंत्री से बातचीत हो रही थी, सो मैं सुन रहा था !

धन०—(स्वगत) अब इस बात को और बढ़ाना ठीक न होगा । (प्रकट) हाँ, सो देखो भाई, तुम्हें मेरे सिर की क़सम, तुमने जो सुना सो सुना, लेकिन अब और किसी से यह चर्चा न करना ।

मद०—क्यों ? उससे हानि क्या है ?

धन०—ना भाई, मैं तुमको मिठाई खाने को दूँगा। ये सब राजों-महराजों की बातें हैं। इनमें पड़ने से तुम्हें क्या लाभ होगा?

मद०—(कुछ क्रोध का भाव दिखाकर) तुमने क्या मुझे कोई नादान बच्चा समझ लिया है, जो मिठाई देकर फुसलाना चाहते हो?

धन०—अच्छा बताओ भाई, क्या देने से तुम संतुष्ट होगे?

मद०—मैं? मुझे अपने हाथ की यह अँगूठी अगर दे दो, तो ख़ैर तुम्हारी ख़ातिर से यह बात मैं किसी से नहीं कहूँगा।

धन०—वाह, तुम तो मुझे पागल कहते थे, लेकिन मैं देखता हूँ कि तुम ही पागल हो गए हो। यह अँगूठी लेकर तुम क्या करोगे? यह अँगूठी भी क्या कोई देने की चीज़ है?

मद०—अच्छा, तो मैं जाकर रानी साहब से सब हाल कहता हूँ। (जाना चाहता है)

धन०—अरे भाई सुनो, ज़रा ठहरो तो। गुस्सा न करो—बात तो सुनो। (स्वगत) यह बात फैल जायगी, तो सब काम बिगड़ जायगा। अब करूँ क्या? यह बहुमूल्य अँगूठी कैसे दे दूँ? क्या किया जाय? मगर अब देनी ही पड़ेगी। हाय, हाय! यह अँगूठी कितनी कोशिश करके महाराज से ली थी।—मगर अब सोचने से होगा ही क्या?

मद०—वाह साहब! आप रो रहे हैं क्या? हाः! हाः! हाः!

धन०—(स्वगत) कैसा आश्चर्य है! एक लड़के ने मुझे चकमा दे दिया! छी-छी! अब क्या करूँ? ख़ैर, देता हूँ। यह काम अगर सफलता के साथ पूरा हो गया, तो राजा से और बहुत कुछ इनाम पाने की संभावना है। (प्रकट) यह लो भाई, मगर याद रखना, यह बात किसी के आगे मत कहना।

मद०—(अँगूठी लेकर) जो आज्ञा। अब जाता हूँ।

(आड़ में हो जाता है)

धन०—बड़ा चालाक छोकरा था! आज कैसी बुरी साइत में इधर आया था! सबेरे उठकर किस अभागे का मुँह देखा था! अब सोच करने से क्या होगा, चलना चाहिए।

(प्रस्थान)

मद०—(आड़ से सामने आकर) हाः-हाः! धनदास का दुःख देखकर हँसी आती है। हाः-हाः! साला जैसा धूर्त है, वैसी ही सज़ा पा गया! अभी क्या हुआ है? इसे काफ़ी सज़ा देनी होगी। नहीं तो मेरा नाम ही मदनिका नहीं। अब चलूँ, अपने असली रूप से राजकुमारी कृष्णा से भेंट करूँगी। अच्छा, अपना परिचय क्या दूँगी? (सोचकर) बस, यही ठीक है! मारवाड़ के राजा मानसिंह की दूती बताऊँगी। हाः! हाः! हाः! (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर का राजबाग़

(अहल्यादेवी और तपस्विनी का प्रवेश)

तप०—रानीजी, बेशक यह बड़ी ख़ुशी की बात है। जयपुर का राजवंश भगवान सूर्यदेव का महा तेजोमय अंश है। इसमें संदेह नहीं कि महाराज जगतसिंह कृष्णा के योग्य पात्र हैं।

अह०—जी हाँ, यह बात तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

तप०—मैंने सुना है कि राजा की अवस्था बहुत थोड़ी है, और वह एक परम धर्मात्मा और विद्यानुरागी पुरुष भी हैं।

अह०—ईश्वर करें, आपके आशीर्वाद से ये बातें सच हों। प्रबल आँधी कमलिनी को छिन्न-भिन्न कर डालती है, मगर मलय-वायु के चलने पर उसकी शोभा दूनी हो उठती है। गुणहीन स्वामी के हाथ पड़ने से स्त्री की श्री नहीं रहती। (सोचकर) कैसा आश्चर्य है ! भगवती, मैं कृष्णा के व्याह के लिये अब तक बहुत ही व्यग्र हो रही थी। लेकिन इस समय उसके व्याह की चर्चा चलने पर मेरा हृदय एकदम व्यथित होकर जैसे रोने लगता है। (रोती हैं)

तप०—मा की ममता ऐसी ही होती है रानीजी।

अह०—भगवती, अपने हृदय-सरोवर का यह पद्म मैं किसे दूँगी ? कौन इसे तोड़कर लेकर चला जायगा ? मैंने जिस मैना को इतने दिन तक यत्न और प्यार के साथ पाला था, उसे मैं कैसे किसी ग़ैर के हाथ में सौंप दूँगी ? अपने अँधेरे घर की इस मणि के चले जाने पर मैं कैसे प्राण-धारण करूँगी ? (रोती हैं)

तप०—देवी, यह विधाता का बनाया नियम है। जिसके कन्या है, उसी को यह यातना सहनी पड़ती है। देखिए, हिमवान् पर्वतराज की पत्नी मेनका को पार्वती के वियोग में कितना दुःख हुआ था ! वह प्राण त्यागने पर उतारू हो गई थीं। यह चिंता और व्यथा वृथा है। जान पड़ता है, अब महाराज राजसभा से भवन को चल दिए होंगे।

अह०—तो फिर चलिए। (दोनों का प्रस्थान)

(कृष्णकुमारी और मदनिका का प्रवेश)

कृष्ण०—तू कहती क्या है दूती ? तेरी बातें सुनने से मुझे डर मालूम पड़ता है। तू इतना क्लेश उठाकर कैसे यहाँ आई ?

मद०—राजनंदिनी, पालू चिड़िया पिंजड़े से उड़ जाती है, तो वन की सब चिड़ियाँ उसके पीछे लगती हैं, वैसे ही, वही दशा मेरी भी हुई। लेकिन आपका चंद्रमुख देखकर मैं उन सब क्लेशों को भूल गई।

कृष्ण०—अच्छा दूती, राजा मानसिंह ने मेरे पिता के पास दूत न भेजकर तुझको मेरे पास क्यों भेजा?

मद०—राजकुमारी, आप तो अत्यंत बुद्धिमती हैं। उसका कारण आप ही समझ सकती हैं। जो जिसे प्यार करता है, वह उसके मन का हाल जाने बिना क्या कभी उसके बारे में कोई काररवाई कर सकता है?

कृष्ण०—(हँसकर) क्या? तेरे महाराज क्या मुझे प्यार करते हैं?

मद०—राजनंदिनी, प्यार करते हैं या नहीं, यह आप क्या पूछती हैं? हमारे महाराज रात-दिन केवल आप ही की बात सोचा करते हैं, आप ही के ध्यान में मग्न रहते हैं, आप ही का नाम जपा करते हैं। और किसी काम में उनका मन ही नहीं लगता।

कृष्ण०—कैसे आश्चर्य की बात है! उन्होंने तो मुझे कभी देखा भी नहीं। फिर वह मुझपर इतना आसक्त कैसे हो गए? इसका क्या कारण है? अच्छा दूती, यह तो बता कि तेरे महाराज के कितनी रानियाँ हैं?

मद०—राजकुमारी, महाराज ने अभी कोई ब्याह ही नहीं किया। मैंने सुना है, वह आपको न पावेंगे, तो और किसी से ब्याह ही नहीं करेंगे। ऐसी प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

कृष्ण०—यह क्या तू सच कहती है?

मद०—राजकुमारी, मैं भला आपके आगे झूठ बोल सकती हूँ ? महाराज ने स्वप्न में आपका रूप देखा था। उसके बाद लोगों के मुँह से आपके गुणों का बखान सुनकर तो वह एकदम पागल-से हो उठे हैं।

कृष्णा०—देख दूती, तुझे मेरे सिर की क़सम, सच बता, तेरे राजा देखने-सुनने में कैसे हैं ?

मद०—राजनंदिनी, उनके सुंदर स्वरूप का वर्णन मैं क्या कर सकती हूँ ? उनके-जैसा मनोहर रूपवाला जवान मैंने तो कहीं देखा-सुना नहीं। कुमारीजी, महाराज का हरएक अंग जैसे साँचे में ढला हुआ है। वैसा ही रंग है, वैसा ही गढ़न है ! जैसे साक्षात् कामदेव हैं ! मैं महाराज का एक चित्र अपने साथ लेती आई हूँ। आप अगर देखना चाहें, तो मैं किसी समय लाकर दिखा सकती हूँ। देखकर आप समझ लेंगी कि उनका रूप कैसा है, और मैं सच कहती हूँ या झूठ।

कृष्णा०—(स्वगत) इस दूती का कहना क्या ठीक है ?—हो भी सकता है। यह क्यों झूठ बोलेगी, जब कि चित्र दिखाने को कहती है। (प्रकट) देख दूती, तू फिर आकर मुझसे मिलना। अब मैं जाती हूँ। मेरी सखियाँ नहर के उस किनारे मेरी राह देखती होंगी।

मद०—जो आज्ञा।

कृष्णा०—(कुछ दूर जाकर) देख, भूलना नहीं। चित्र अवश्य लाना। तुझसे बहुत कुछ कहना-सुनना है। (प्रस्थान)

मद०—(स्वगत) लोग विलासवती के रूप की बड़ाई करते हैं। लेकिन महाराज को अगर यह रत्न मिल जाय, तो मैं बदकर

कहती हूँ कि महाराज फिर विलासवती की तरफ़ आँख उठाकर नहीं देखेंगे। आहा! ऐसा रूप इस पृथ्वी पर होना असंभव है। वैसे ही गुणों की भी खान है। जैसे साक्षात् लक्ष्मी है। ऐसी सीधी और भोली स्त्री होना कठिन है। (सोचकर) खैर, वह चाहे जो हो, इस राजकुमारी का मन मानसिंह की ओर फेर देने से ही सब काम बन जायगा। नदी एक बार समुद्र के अभिमुख हो जाने पर फिर दूसरी ओर नहीं मुड़ती। (सोचकर) राजा मानसिंह का दूत बहुत जल्द इस राज्य में आवेगा—इसमें कोई संदेह नहीं। वह क्या मेरा वह पत्र पाकर निश्चित बैठे रह सकेंगे ? वह लो, महाराज भीमसिंह इधर ही आ रहे हैं। मैं ज़रा इस पेड़ की आड़ में छिपकर देखूँ, क्या बातचीत होती है।

(आड़ में हो जाती है)

(राजा के साथ अहल्यादेवी और तपस्विनी का फिर प्रवेश)

तप०—महाराज ने राजदूत का नाम क्या बताया ?

भीम०—जी, उसका नाम धनदास है। आदमी बहुत गुणी और दूरदर्शी है। राजा जगत्सिंह आप भी बड़े गुणी, उदार और शूरवीर हैं। उनकी कीर्ति भी चारों ओर फैली है।

तप०—महाराज, आप लोगों पर भगवान् एकलिंग की बड़ी कृपा है। आहा, कैसी सुंदर और अद्भुत घटना है। उसी विधाता ने जैसे रघुकुलतिलक रामचंद्र को सुंदरी जानकी का पाणिग्रहण करने के लिये लाकर उपस्थित कर दिया। इससे बढ़कर आनंद की बात और क्या हो सकती है ?

भीम०—जी हाँ, यह सब आप ही की कृपा और आशीर्वाद का फल है।

भृत्य—जो आज्ञा महाराज। (प्रस्थान)

भीम०—आओ प्रिये, अंतःपुर में चलें। मुझे अभी फिर राजसभा में जाना पड़ेगा।

कृष्ण०—(स्वगत) उस दूती का कहना अगर सच है, तो मैं समझती हूँ, यह दूत मेरे ही ब्याह का प्रसंग लेकर आया है। मालूम नहीं, पिता क्या निश्चय करेंगे ?

अह०—(तपस्विनी से) भगवती, आप भी चलिए।

(सबका प्रस्थान)

मद०—(चित्रपट हाथ में लिए आगे बढ़कर) ओह ! रानी का शोक देखकर छाती फटती है। ऐसी लड़की पर मा-बाप का इतना स्नेह क्यों न हो ? यह दूसरा दूत किस देश से आया है, कुछ अच्छी तरह समझ नहीं आया। जाकर देखूँ, मामला क्या है ? मुझे तो पूरा विश्वास है कि यह दूत राजा मानसिंह ने ही भेजा है। परमेश्वर करे, ऐसा ही हो। अब चलकर फिर अपना वही मर्दाना रूप रख लूँ। अगर यह मानसिंह का दूत हुआ, तो मैं आज अवश्य धनदास का सर्वनाश कर सकूँगी। हाः-हाः ! जो लोग स्त्री को निर्बोध बताकर उससे घृणा करते हैं, वे यह नहीं सोचते कि स्त्रियाँ शक्ति-स्वरूपिणी हैं। जो महादेव पल-भर में त्रिभुवन का संहार कर सकते हैं, उन्हें भगवती ने अपने कौशल से अपने पैरों के नीचे डाल रक्खा है। स्त्रियों की बुद्धि के आगे और किसकी बुद्धि काम कर सकती है ? अभी देख लूँगी कि धनदास के कितनी बुद्धि है, और मेरे कितनी।—लो, राजनंदिनी तो इधर ही लौटी आ रही हैं। काम बन गया। मुँह देखने से जान पड़ता है, मेरी चालाकी का कुछ असर पड़ गया है। अगर यह बात न होती, तो वह

मुझसे इतनी जल्दी मिलने क्यों आतीं ? अबकी यह चित्रपट दिखा दूँगी। देखूँ, उससे कहाँ तक असर पड़ता है ?—हाः-हाः-हाः ! यह मानसिंह का चित्र नहीं है। मगर इससे क्या ? राजकुमारी इसे देखकर रीझ अवश्य जायगी। मेरा मतलब भी यही है।

(कृष्णकुमारी का फिर प्रवेश)

कृष्ण०—दूती, तू फिर आगई क्या मुझे खोज रही है ? मैं अभी सुन आई हूँ कि तेरे महाराज ने दूत भेजा है। पहले तो समझी थी कि तू झूठी गप्प लड़ा रही है।

मद०—राजकुमारी, यह भी कहीं हो सकता था ? हम ऐसे लोगों को कहाँ इतना साहस हो सकता है ?

कृष्ण०—देख दूती, मुझे जान पड़ता है, इस मामले में कुछ-न-कुछ झगड़ा ज़रूर उठ खड़ा होगा। तूने क्या सुना नहीं कि जयपुर के राजा ने भी इसी मतलब से अपना दूत यहाँ भेजा है ?

मद०—मगर कुमारीजी, इससे क्या हमारे महाराज डर जायँगे ? आप अनुमति दें, तो वह अभी जयपुर की ईंट से ईंट बजवा दें।

कृष्ण०—(हँसकर) तू तो अपने राजा की बड़ाई बार-बार किया करती है। अब देखें, क्या होता है ?

मद०—राजनंदिनी, अगर आप हमारे महाराज के पक्ष में हों, तो फिर क्या कहना है ?

कृष्ण०—(हँसकर) देख दूती, पारिजात पुष्प के लिये इस समय इंद्र और यदुपति कृष्ण का झगड़ा तो उठ खड़ा हुआ है, अब देखें, कौन जीतता है।—अच्छा, तो अब तू अपने यहाँ के दूत से जाकर मिल।

मद०—जो आज्ञा। (कुछ दूर जाकर फिर लौटती है) राजकुमारी, आपको अपने महाराज का एक चित्रपट दिखाने को जो कहा था, सो यह चित्रपट लीजिए। (हाथ में देती है) अभी इसे आप अपने ही पास रखिए, मुझे फेर दीजिएगा। (प्रस्थान)

कृष्ण०—(स्वगत) कैसा आश्चर्य है! राजा मानसिंह का नाम और बातें सुनकर मेरा चित्त इतना चंचल हो उठा! इसका कारण क्या है? (चित्र की ओर ग़ौर से देखकर) आहा, ऐसा रूप! वाह, कैसे अधर हैं, कैसी मुस्कान है, ऐसा सुंदर पुरुष और कौन इस पृथ्वी पर है? दूती ने ठीक ही कहा था। हाय, मेरे भाग्य में क्या यह आशा पूरी होना बदा है? मेरा मन बहुत ही चंचल हो उठा है। ना, यहाँ अब ठहरना उचित नहीं। कोई सखी आकर मेरी दशा देख लेगी तो हँसेगी। जाऊँ। अंतःपुर में चलूँ। वहाँ जाकर एकांत में यह चित्रपट देखूँगी। वाह, कैसा सौंदर्य है!

(चित्रपट को देखते-देखते प्रस्थान)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुर के राजभवन के सामने

(मारवाड़ के दूत के साथ मर्दाने लिबास में मर्दानिका का प्रवेश)

दूत—कैसा आश्चर्य है ! तो उस पत्र की बातें क्या सच हैं ?

मद०—जी हाँ, सच नहीं, तो और क्या है। राजकुमारी ने पत्र लिखकर पहले मुझे दिया था । उसके बाद मैंने ही एक विश्वासी आदमी के हाथ आपके देश में भेज दिया था ।

दूत—इसे हमारे महाराज का सौभाग्य कहना चाहिए । यह न होता, तो राजकुमारी क्या हमारे महाराज के ऊपर इतना रीझ जाती ? आहा, विधाता की कैसी अद्भुत लीला है ! कोई महामणि को पाने के लिये अँधेरी खान के भीतर जाने का कष्ट उठाता है, और कोई उसी महामणि को राह चलते पा जाता है । यह सब भाग्य से होता है । वह पत्र पाते ही महाराज की जो दशा हो गई है, सो मैं तुमसे क्या कहूँ ?

मद०—देखो भाई, तुम यहाँ ज़रा सावधानी से रहना । उस पत्र की बात यहाँ किसी से न कहना, नहीं तो राजकुमारी लज्जा के मारे अपनी जान ही दे देंगी ।

दूत—यह तुम क्या कहते हो भाई ? मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ ? ऐसी बात भी कहीं प्रकट की जाती है ?

मद०—वह देखिए, जयपुर का दूत धनदास आ रहा है। इसे तो आप अच्छी तरह जानते-पहचानते होंगे ?

दूत—नो, उससे-मुझसे विशेष परिचय नहीं है।

मद०—महाशय, वह आपके राजा की ऐसी निंदा करता है कि आप सुन लें, तो आपे में न रहें।

दूत—हाँ ?

मद०—और उसकी इस बदमाशी से राजकुमारी का जैसा नाश होता है, सो मैं आपसे क्या कहूँ। क्या आप भी इस बदमाश को कुछ मज़ा चखा सकते हैं ? अगर आप ऐसा कर सकें, तो बहुत अच्छा हो।

दूत—क्या ? वह क्या कहता है ?

मद०—अजी वह जो कहता है, उसे ज़बान पर लाते भी मुझे लज्जा मालूम होती है। वह लोगों के सामने कहता फिरता है कि महाराज मानसिंह एक भ्रष्टा स्त्री के दत्तक पुत्र मात्र हैं। वह मारवाड़ की गद्दी के असली हक़दार भी नहीं हैं।

दूत—ऐं—क्या कहा ? उसकी इतनी मजाल ! क्या कहूँ, मैं एक तो ब्राह्मण, दूसरे बूढ़ा हूँ; नहीं तो इसी घड़ी उसका सिर काट डालता।

मद०—इस बात पर यों बिगड़ने से काम नहीं चलेगा। अगर आप ताने की बातों से इस दुष्ट को छका सकें, तो अच्छा है। नहीं तो इस तरह खुल्लमखुल्ला बिगड़कर अपने को ऊधमी साबित करना ठीक नहीं।

दूत—अच्छा, मैं राजमंत्री के पास जाता हूँ। उसके बाद जो सलाह होगी, सो किया जायगा। सियार के मुँह से सिंह की निंदा भी कहीं सुनी जा सकती है ? (प्रस्थान)

मद०—(स्वगत) वाह, कैसा गड़बड़झाला डाल दिया है ! ऐसा जाल फैलाया है कि सब उसमें फँस जायँगे। अब जगदीश्वर यह करें कि इस गड़बड़ से राजकुमारी कृष्णा का कुछ अमंगल न हो। अच्छा, यह भी तो बड़ा आश्चर्य है ! मैं एक वेश्या की सहचरी, वन की चिड़िया की तरह अपनी इच्छा के अधीन, संसार के पिंजड़े में कभी न बँधनेवाली होकर भी राजकुमारी का इतना प्यार क्यों करने लगी हूँ ? राजकुमारी के स्वभाव ने मेरे ऊपर कौन-सा जादू डाल दिया है ? सच है, लज्जा और सुशीलता ही नारी-जाति का अलंकार है। मैं और विलासवती, दोनों इस समय कैसी स्थिति में हैं, यह बात इसी समय मुझे अच्छी तरह देख पड़ रही है ! लो, वह धनदास तो इधर ही आ रहा है।

(धनदास का प्रवेश)

मद०—महाशय, आप अच्छे तो हैं ?

धन०—अरे मदनमोहन, तुम हो ? अच्छे हो भाई ? भला वह अँगूठी तुमने कहाँ रख दी ?

मद०—जी, आपसे कहते लज्जा मालूम होती है। आप सुन लेंगे, तो नाराज़ होंगे।

धन०—इसके क्या माने ? मैं नाराज़ क्यों होऊँगा ?

मद०—अच्छा, तो सुनिए। इस नगर में मदनिका नाम की एक बहुत ही सुंदरी स्त्री है। उसी ने मुझसे वह अँगूठी ले ली है।

धन०—छी-छी ! ऐसा अमूल्य रत्न भी कोई वेश्या को दे देता है ? तुम तो बिलकुल नादान देख पड़ते हो जी ! इतनी थोड़ी अवस्था में ही ऐसी औरतों के पास जाना और बैठना-उठना क्या तुम्हें उचित जान पड़ता है ?

मद०—वाह साहब, अभी आप नाराज़ न होने का वादा कर चुके हैं, और फिर नाराज़ हो रहे हैं !

धन०—(स्वगत) बिगड़ना ठीक नहीं—शांति से अपना काम निकालना चाहिए। (प्रकट) हाः-हाः ! मैं दिल्लगी कर रहा था जी ! इसमें नाराज़ होने की बात ही क्या है ? यह जानकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई कि तुम भी एक रसिक और सहृदय हो।—अच्छा भाई, तुम्हारी मदनिका कहाँ रहती है ?

मद०—जी, उसका घर इस गढ़ के बाहर है।

धन०—(स्वगत) उस औरत के घर का पता लग जाय, तो फिर उसे कुछ देकर वह अँगूठी हथिया लेना कुछ कठिन न होगा। अगर वह ख़ुशी से सहज में न देगी, तो इसका भी उपाय किया जा सकेगा। (प्रकट) हाँ, कहाँ बताया भाई ?

मद०—इस गढ़ के बाहर।

धन०—अच्छा, वह औरत देखने में तो अच्छी है ?

मद०—जी हाँ, कुछ ऐसी बुरी नहीं है। महाराज, वह देखिए राजा मानसिंह का दूत मंत्री के साथ इधर ही आ रहा है।

धन०—हाँ।—अच्छा, मैंने जो तुमसे कहा था कि अंतःपुर में राजकुमारी के आगे हमारे महाराज जगतसिंह की तारीफ़ कर देना, सो कुछ किया या नहीं ?

मद०—भला इसके लिए भी कुछ कहना-सुनना है ? मैंने यह काम इतनी ख़ूबी के साथ किया है कि दुनिया भर में दूसरा कोई आदमी नहीं कर सकता था।

धन०—हाँ भाई, बेशक तुम्हारी मुझ पर बड़ी कृपा है।—अच्छा, हाँ, तो तुम्हारी मदनिका गढ़ के बाहर किस स्थान पर रहती है ?

मद०—उसके लिये आपको इतनी उतावली क्यों है ? किसी दिन मैं आपसे उसकी मुलाक़ात करा दूँगा। बस, आप यही तो चाहते हैं ? अब मैं ठहर नहीं सकता—जाता हूँ। (स्वगत) देखूँ, भैया धनदास के ऊपर कैसी गुज़रती है !

(प्रस्थान)

धन०— (स्वगत) अँगूठी फिर न हथियाई, तो कुछ काम न किया। वह अँगूठी दस हज़ार रुपए से कम दाम की न होगी। वह क्या सहज में छोड़ी जा सकती है ? महाराज को फुसलाकर, कितना कौशल करके, वह अँगूठी प्राप्त की थी ! अगर यह छोकरा मुझे उस तरह लाचार न कर देता, तो मैं कभी मरने पर भी वह अँगूठी अपने से अलग न करता। अब ज़रा उस मदनिका के घर का पता लग जाय, तो फिर सब काम बन जाय। धनदास को अपनी चतुरता का घमंड है; वह क्या यों ही चूर हो जायगा ?

(मंत्री के साथ मारवाड़ के दूत का प्रवेश)

मंत्री—लीजिए, धनदासजी तो यहीं मौजूद हैं। (धनदास से) चलिए, राजसभा में उपस्थित होने का समय तो आ गया।

दूत०—क्यों मंत्रीजी, यही तो राजा जगतसिंह के दूत हैं न ?

मंत्री—जी हाँ।

दूत—(धनदास से) महाशय, हम दोनों ही अमूल्य स्त्री-रत्न की आशा से इस देश में आए हैं, इसलिये हम दोनों में पटैती होना असंभव नहीं। लेकिन इसी कारण हममें से कोई अगर दूसरे से बुरा व्यवहार करे, तो क्या वह उचित होगा ?

धन०—जी नहीं, वह कैसे उचित कहा जा सकता है ?

दूत—मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आप जो हर घड़ी हर आदमी से हमारे महाराज मरुस्थलाधीश्वर मानसिंह की निंदा किया करते हैं, सो क्या अच्छी बात है ?

धन०—(आश्चर्य के भाव से) आप कहते क्या हैं ? यह बात आपसे किसने कही ?

दूत—महाशय, हवा चले विना कहीं कोई पत्ता हिलता है ?

धन०—मुझे जान पड़ता है, आप गले पड़कर झगड़ा करना चाहते हैं।

दूत—आपसे झगड़ा करना व्यर्थ है। मगर इसमें कुछ संदेह नहीं कि आप अपने इस कुकर्म का दंड अवश्य पावेंगे। आपके राजा वेश्या के दास हैं। वह नृत्य-गीत प्रेमालाप आदि बातों में ही निपुण हैं। वह क्या कभी राजेंद्रकेसरी वीर मानसिंह की बराबरी का दावा कर सकते हैं, या वह राजकुमारी सुकुमारी कृष्णा के योग्य हैं ?

धन०—(मंत्री से) महाशय, आपने सुन लिया ? (कानों पर हाथ रखकर दूत से) क्या कहूँ, तुम वृद्ध ब्राह्मण हो, नहीं तो मैं आज तुमको जीता न छोड़ता।

दूत—क्या ? तुम क्या कर लेते ? इतनी मजाल ?

मंत्री—महाशयो, आप दोनों शांत होइए। आपको यह वृथा की ज़बानी लड़ाई बंद कर देना चाहिए। इससे क्या मतलब निकलेगा ? ख़ासकर आप लोग सज्जन और भद्र पुरुष हैं। इस तरह 'तू-तू मैं-मैं' करने में आपकी भी बेइज़्ज़ती है।

धन०—जी हाँ, यह तो सच है। लेकिन आप ही न्याय कीजिए, इसमें मेरा क्या अपराध है। इन्होंने ही तो मुझे छेड़ा।

(बलेंद्रसिंह का प्रवेश)

बलेंद्र०—यह क्या महाशय, आप लोग अभी से लड़-झगड़ रहे हैं! वही मसल है कि "सूत न कपास और कोरी से लठंलठा"।

दूत—जी नहीं, युद्ध क्यों शुरू होगा। मैं तो इन जयपुर के दूत महाशय को दो-एक हित की बातों का उपदेश कर रहा था।

बलेंद्र०—किन हित की बातों का उपदेश कर रहे थे? आप यही उपदेश कर रहे थे न कि वह राजकुमारी की आशा छोड़कर अपने देश को चले जायँ—क्यों? हाः-हाः!

धन०—हाः-हाः-हाः! हाँ बस यही कहिए।

दूत—जी हाँ, मेरी समझ में तो इन्हें यही करना चाहिए। महाशय, मान बड़ी चीज़ है। इसलिये मनुष्य को मान की रक्षा के ऊपर सदा विशेष ध्यान रखना चाहिए।

बलेंद्र०—हाः-हाः, वाह साहब वाह! महाशय, आप तो साक्षात् चाणक्य के अवतार देख पड़ते हैं। अच्छा महाशय, मैंने सुना है कि आपके मरुदेश में भगवती पृथ्वी बाँझ की प्रकृति धारण किए हुए है। तो फिर बताइए, आपके यहाँ का राज-काज कैसे चलता है?

दूत—वीरवर, क्या कोई बाँझ स्त्री के साथ रहकर अपनी गृहस्थी नहीं चलाता?

बलेंद्र०—हाः-हाः! खूब! (धनदास से) अच्छा महाशय, आप अपने जयपुर-राज्य का तो वर्णन कीजिए।

धन०—जी, भला मेरी क्या ताक़त है, जो जयपुर-राज्य का या जयपुर के महाराज का वर्णन करूँ? अगर मेरे हज़ार मुख होते, तो भी मैं जयपुर-राज्य की सुख-संपत्ति का संपूर्ण वर्णन न कर

सकता। महाशय, हमारे जयपुर का दूसरा नाम अंबर है। हमारा अंबर साक्षात् अंबर (आकाश) ही है। वहाँ की स्त्रियाँ तारागण के समान कांतिवाली और सुंदरी हैं। मेघमाला में जैसे बिजली और जलबिंदु होते हैं, वैसे ही वहाँ के रत्न-भांडार में हीरा-मोती आदि असंख्य अनमोल रत्न हैं। हमारे महाराज तो साक्षात् पूर्णचंद्र के समान हैं।

दूत—निःसंदेह वह चंद्रमा के समान कलंकी हैं।

बलेंद्र०—हाः-हाः ! धनदास, क्यों ? तुम क्या कहते हो ?

धन०—जो, इसके उत्तर में मैं क्या कहूँ ? उल्लू से कभी सूर्य का प्रकाश नहीं देखा जाता। और अगर भूख के मारे कभी रात को निकलता है, तो भी चंद्र को आप अच्छी तरह देख नहीं सकता। मतलब यह कि तेजोमय वस्तुएँ सब उसकी आँखों को शूल-सी जान पड़ती हैं।

बलेंद्र०—हाः-हाः ! क्यों जी दूत—क्या कहते हो ?

(नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

मंत्री—यह लो, महाराज राजसभा में आ गए। चलो, हम लोग भी चलें।

(रक्षक का प्रवेश)

रक्षक—(हाथ जोड़कर) बोरवर, गणेशगंगाधर शास्त्री नाम का एक दूत महाराष्ट्र-सेना की छावनी से आया है, और नगर के सिंहद्वार पर उपस्थित है। आपकी क्या आज्ञा है ?

बलेंद्र०—दूत है ? महाराष्ट्र-सेना की छावनी से आया है ? अच्छा, उसे राजसभा में ले जाओ। मैं भी आता हूँ। (धनदास और मानसिंह के दूत से) चलिए, हम सब लोग राजसभा को चलें

(सबका प्रस्थान और मदनिका का फिर प्रवेश)

मद०—(आप-ही आप) अब तो मेरा काम पूरा हो गया। अब इस नगर में ठहरने की या देर करने की ज़रूरत ही क्या है? मेरे कौशल से राजनंदिनी राजा मानसिंह के ऊपर इतना रीझ गई है कि वह जगत्‌सिंह का नाम सुनते ही एकदम जैसे जल उठती है। मेरा पत्र पाकर मानसिंह ने भी दूत भेज दिया है। बस, अब यहाँ रहकर क्या होगा? जाऊँगा ज़रूर, लेकिन राजनंदिनी को छोड़कर जाने को जी ही नहीं चाहता। आहा, ऐसी सुशील और सुंदरी लड़की दूसरी न होगी। हे परमेश्वर, मैं तो इस जंगल में आग लगा चली, मगर ऐसी कृपा कीजिए कि यह आग दावानल का रूप न रक्खे, और इस भोली-भाली मृगी का स्पर्श न करे। प्रभो, तुम ही कृपापूर्वक राजनंदिनी की रक्षा करना। चलूँ, मुझको दुष्ट धनदास से पहले ही जयपुर पहुँचना होगा। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर का राजबाग़

(तपस्विनी का प्रवेश)

तप०—(स्वगत) कैसा आश्चर्य है, मैंने भगवान् गोविंदराज के मंदिर में उस रात को कृष्णाकुमारी के संबंध में जो बुरा सपना देखा था, वह क्या सच ही होगा? राजा जगत्‌सिंह और राजा मानसिंह, दोनों ने राजकुमारी के पाणिग्रहण की आशा से अपने-अपने दूत भेजे हैं। ये दोनों मत्त गजराज क्या युद्ध किए बिना निवृत्त होंगे? इन दोनों के भयंकर संघर्ष से इस देश की दुर्दशा हुए बिना नहीं रहेगी। हा! विधाता की यह कैसी विडंबना है।

(लंबी साँस छोड़कर) दीनबंधो, तुम ही सत्य हो। इधर देखता हूँ राजनंदिनी कृष्णा का अनुराग दिन-दिन मानसिंह के ऊपर ही बढ़ता जाता है। चलूँ, यह बात रानी को अवश्य जता देनी चाहिए। (प्रस्थान)

(कृष्णकुमारी का प्रवेश)

कृष्णा०—(स्वगत) वह दूती क्या चिड़िया बनकर उड़ गई ? मैंने उसे ढूँढ़ लाने के लिये अनेक स्थानों में अनेक लोग भेजे, मगर उसका पता नहीं है। (लंबी साँस छोड़कर) कैसा आश्चर्य है ! वह कौन-सा जादू डालकर, किस माया के बल से मुझे रिझा गई—मेरे चित्त में इतनी चंचलता पैदा कर गई ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता। हाय रे अबोध मन ! तू क्या वृथा इतना चंचल हो रहा है ? रात का देखा सपना भी कहीं सफल होता है ? वह दूती क्या मुझे धोखा दे गई ? मगर यही किस तरह मान लूँ ? उसके राजा का दूत तक आ गया है। (कुछ सोचकर) भगवती कपालकुंडला से अपने जी की बात कहकर क्या मैंने अच्छा किया ? लेकिन ऐसा रहस्य भी क्या अपने मन में छिपाकर रक्खा जा सकता है ? जैसे कीड़ा फूल की कली को काटकर बाहर निकल आता है, वैसे ही ऐसी बातें भी अवश्य बाहर निकल आती हैं।—वह भगवती कपाल-कुंडला माँ के साथ बातें करती इधर ही आ रही हैं। शायद मेरी ही बातें कर रही हैं। हाय-हाय ! छी-छी ! कैसी लज्जा की बात है ! मैंने अपने जी की बात जो तपस्विनीजी से कही है, उसे सुनकर मेरी माता क्या कहेंगी ? मैं किस तरह माता को अपना मुँह दिखाऊँगी ? मालूम नहीं, विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिखा है ? चलूँ, इस समय तो संगीत-शाला में भाग जाऊँ।

(प्रस्थान, और अहल्यादेवी के साथ तपस्विनी का फिर प्रवेश)

अह०—आप यह क्या कह रही हैं भगवती ? आपने क्या यह बात कृष्णा के मुँह से सुनी है ?

तप०—जी हाँ, उसने आप ही कही थी।

अह०—कैसा आश्चर्य है !

तप०—रानीजी, लज्जा युवती स्त्रियों के हृदय-द्वार का ताला होती है। उसे खोलना क्या सहज काम है ? आपसे क्या बताऊँ कि मैं कैसा और कितना कौशल करके इस काम में सफलता प्राप्त कर सकी हूँ।

अह०—इसी कारण कृष्णा का चेहरा इतना उदास देख पड़ता है। अच्छा भगवती, यह भी कुछ आपको मालूम हुआ है कि कृष्णा एकाएक राजा मानसिंह के ऊपर ऐसा क्यों रीझ गई ?

तप०—रानीजी, यह दैवी घटना है। वह जो सूर्यमुखी का फूल आप देख रही हैं, वह खिलते ही सूर्य की ओर मुख किये रहता है। लेकिन यह फूल सूर्य की ओर मुख क्यों रखता है, इसका कारण कोई नहीं बता सकता।

अह०—भगवती, सूर्यदेव की उज्वल कांति देखकर सूर्यमुखी उधर उन्मुखी होती है। मगर मेरी कृष्णा ने तो मानसिंह को कभी देखा भी नहीं।

तप०—देवी, मानसिक दृष्टि से क्या लोग नहीं देख पाते ? खासकर भगवान् कामदेव की लीला और महिमा क्या आपसे छिपी हुई है ? दमयंती क्या अपने चर्म-चक्षुओं से देखकर राजा नल के ऊपर अनुरागिणी हुई थीं ? (चौंककर) आहा ! कैसी

ध्वनित करती हुई पंचम-स्वर में दिन-रात अपने मन का भाव प्रकट करती रहती है। वैसे ही जवानी के आने पर मनुष्य का हृदय भी चुप नहीं रह सकता।

अह०—भगवती, आपके श्रीमुख से यह समाचार जब से मैंने सुना है, तब से मेरा हृदय अत्यंत अस्थिर हो रहा है। हाय-हाय मुझ-सी अभागिनी स्त्री और कौन होगी? बड़ी इच्छा थी कि बड़े उत्साह से धूम-धाम के साथ कृष्णा का ब्याह करूँगी। लेकिन विधि की विडंबना से वह सब विफल होते देख पड़ता है।

(रोती हैं)

तप०—क्यों रानीजी, रोती क्यों हो? तुम्हारी इच्छा पूरी क्यों न होगी?

अह०—भगवती, आप क्या यह समझती हैं कि हमारे महाराज मारवाड़ के राजा मानसिंह को बेटी देना स्वीकार कर लेंगे? एक तो राजा मानसिंह के साथ उनका वैसा सद्भाव नहीं है, दूसरे उनका दूत भी पीछे आया है। पहले जयपुर का दूत ही यहाँ आया है।

तप०—तो पहले आने से क्या होता है? जो गोतेखोर पहले गोता लगाता है, उसी को क्या सागर श्रेष्ठ मोती देता है? यह क्या बात है रानीजी? आपकी कन्या है। आप लोग जिसे चाहें उसी को अपनी कन्या दें। इसमें आगा-पीछा करने की क्या ज़रूरत है?

अह०—(लंबी साँस छोड़कर) भगवती, मैं क्या अपनी इच्छा के अधीन हूँ? आहा, भगवती, तनिक इधर देखिए—(आगे बढ़कर) आओ, बेटी आओ।

(कृष्णकुमारी का फिर प्रवेश)

अह०—बेटी, तुम्हारा मुख आज इतना उदास क्यों है ?

कृष्ण०—नहीं माताजी, मैं तो उदास नहीं हूँ ।

अह०—यह क्या ? तुम रोती क्यों हो बेटी ?

कृष्ण०—(चुपचाप मा के गले से लिपटकर रोती हैं ।)

अह०—छी बेटी, छी ! तुम रोती क्यों हो ? तुम्हें ऐसा क्या दु:ख है, क्या कमी है, जो यों रो रही हो ?

तप०—(स्वगत) यह नया ज्ञान है । ज्ञान के देवता का धाम बिना कैसे भेंग धारण कर सकती है ?

अह०—बेटी, रोओ मत ।

कृष्ण०—माताजी, मैंने ऐसा क्या अपराध किया है, जो आप लोग मुझको पानी में बहा देने के लिये तैयार हैं ?

(रोती हैं)

अह०—मैं तुम पर वारी बेटी, तुमको हम लोग पानी में क्यों बहा देने लगे ? यह विधाता का विधान है—उसको सभी लोग मानते हैं । बेटी सदा अपने मा-बाप के घर नहीं रह सकती ।

(रोती हैं)

तप०—पुत्री, पक्षी का बच्चा क्या सदा उसी घोंसले में रहता है, जिसमें उसका जन्म होता है ? बेटी, अपनी मा को देखो, यह भी तो पिता का घर छोड़कर यहाँ आई हैं । तुमको भी उसी तरह दूसरे के घर जाना होगा । इसमें क्षोभ की क्या बात है ?

कृष्ण०—भगवती !—

(रोती हैं)

अह०—धीरज धरो बेटी । छी—कोई रोता है ?

कृष्णा०—मुझे इतने दिन पालकर अब क्या त्याग दोगी मा ?

(रोती है)

तप०—रानाजी, वह देखिए, महाराज इधर ही आ रहे हैं। आप दोनों मा-बेटियों को यह दशा देखकर उन्हें भी दुःख होगा। आप एक काम करें, राजनंदिनी को साथ लेकर हट जायँ।

अह०—आओ बेटा, चलें। (दोनों का प्रस्थान)

तप०—(स्वगत) मैंने सोचा था कि राना को त्यागने से, निराहार रहने से, कठोर तपस्या करने से संसार की माया-शृंखला से मुक्ति मिल जाती है। मगर कहाँ ? मुझे यह किसी तरह नहीं जान पड़ता कि मुझे वह मुक्ति मिल गई। आह ! इस परिवार का शोक देखकर मेरी छाती जैसे फटने लगती है। (लंबी सांस छोड़कर) विधाता, तुमने इस मनुष्य-हृदय में जिन इंद्रियों के बीज बो दिए हैं, उन्हें निर्मूल करना मनुष्य की शक्ति से परे है। विलाप और आर्त की पुकार सुनकर योगींद्रों के हृदय भी चंचल हो उठते हैं।

(राना भीमसिंह का प्रवेश)

राना—भगवती, रानीजी तो अभी यहीं थी न ?

तप०—जी हाँ, वह अभी यहीं थी। शायद अभी फिर आती होंगी।

राना—मुझे उनसे कुछ विशेष बातें कहनी थीं। (टहलते हैं) जान पड़ता है, आपने भी सुना होगा, मारवाड़ के राजा मानसिंह ने भी कृष्णा के पाणि-ग्रहण की इच्छा से अपना दूत भेजा है।

तप०—जी हाँ, मैं सुन चुका हूँ।

राना—(लंबी सांस छोड़कर) भगवती यह सब मेरे भाग्य ही का दोष है।

तप०—महाराज, आप यह क्या कह रहे हैं? इसमें बुराई ही क्या है? राजकुमारियों का पाणि-ग्रहण करने के लिये अनेकों राजा प्रार्थना किया ही करते हैं।

राना—भगवती, आप सदा तपस्या ही में समय बिताती हैं, इस कारण इस देश के लोगों का चरित्र अच्छी तरह नहीं जानतीं। इस विवाह के लिये न-जाने कौन अनर्थ उठ खड़ा हो!

(अहल्यादेवी का फिर प्रवेश)

राना—प्रिये, मुझे यह किसी तरह विश्वास नहीं होता कि तुम्हारी कृष्णा का विवाह संपन्न हो सकेगा। अवश्य कुछ-न-कुछ बखेड़ा उठ खड़ा होगा।

अह०—सो कैसे नाथ?

राना—क्या बताऊँ रानी? इस बारे में महाराष्ट्र-देश के राजा मानसिंह का पक्ष लेकर कहते हैं कि—

तप०—रानाजी, तो फिर आप राजा मानसिंह से ही कृष्णा का ब्याह क्यों नहीं कर दीजिये? वह भी तो कोई साधारण राजा नहीं है!

अह०—हृदयेश्वर, इस दासी की भी यही प्रार्थना है।

राना—कहती क्या हो देवी? राजा जगतसिंह मेरे परम आत्मीय हैं; उस पर पहले उन्हीं का दूत आया है। अब मैं क्या कहकर उन्हें इस मामले में निराश करूँ? (लंबी साँस छोड़कर) हाय विधाता! तुमने जो यह आग लगाई है, वह क्या बिना रक्तपात के बुझेगी?

अह०—प्राणेश्वर, महाराष्ट्र-पति इस मामले में क्यों हाथ डालते हैं? इसका क्या कारण है? वह तो अपने देश को लौट जाने के लिये तैयार थे न?

राना—देवी, तुम उस नराधम के चरित्र को अच्छी तरह नहीं जानतीं। वह तो यही चाहता है। वह तो एक-न-एक बहाना ढूँढ़ता ही है।

तप०—अच्छा महाराज, आप अगर इस मामले में महाराष्ट्र-पति का अनुरोध न स्वीकार करें, तो वह क्या करेगा ?

राना—तो उसके साथी दस्युओं का दल फिर देश को लूटना शुरू कर देगा। हाय! तब फिर क्या कुछ देश में रह जायगा ? भगवती, इस समय क्या मेरी ऐसी अवस्था है कि ऐसे प्रबल शत्रु को दबा सकूँ ?

तप०—महाराज, राज्य-लक्ष्मी की कृपा से आपके यहाँ काहे की कमी है ?

अह०—(राना का हाथ पकड़कर) नाथ, आप इसके लिये इतने चिंतित और अधीर न हों। मुझे जान पड़ता है, भगवान् एकलिंग की कृपा से यह सब झंझट बहुत शीघ्र शांत हो जायगा।

राना०—रानीजी, तुम तो राजपुत्री हो। तुम क्या नहीं जानतीं कि इस मामले में मैं जिसे निराश करूँगा, वही, उसी समय, युद्ध के लिये तैयार हो जायगा ? प्रिये, तुम्हारी कृष्णा क्या लता की तरह अपने पिता का सर्वनाश करने को पैदा हुई है ? हाय! मैंने विधाता का कौन ऐसा अपराध या पाप किया है, जो वह भी मेरे प्रतिकूल हो रहे हैं ? मेरा यह अमूल्य रत्न भी क्या अंगारा होकर मुझे जलावेगा ? मुझे यह नहीं मालूम था कि मेरे हृदय की निधि से ही मेरे सर्वनाश की सूचना होगी !

(रानी चुपचाप रोती हैं)

तप०—यह क्या रानीजी ? यह आप क्या करती हैं ?

अह०—भगवती, यमराज क्या मुझे भूल गए हैं ? (रोती हैं)

तप०—छी ! यमराज आपके शत्रुओं को याद करें।—महाराज, आज्ञा हो, तो मैं रानीजी को साथ लेकर अंतःपुर को जाऊँ।

अह०—नाथ, आप ही बताइए, इसमें मेरी कृष्णा का क्या दोष है ? मेरी बच्ची तो भला-बुरा कुछ भी नहीं जानती। उसे आप दोष देते हैं, यह मुझसे कैसे सुना जा सकता है ?—बेटी, तू क्यों इस अभागिन के गर्भ से पैदा हुई थी ?

(रोती है)

राना—(रानी का हाथ पकड़कर) देवी, मेरा यह अपराध क्षमा करो। हाय-हाय ! मैं कैसा नराधम हूँ ! जान पड़ता है, मुझ-सा अभागा दूसरा कोई इस संसार में न होगा। ऐसा अमृत भी मेरे लिये विष हो गया !—अच्छा, चलो प्रिये, इस समय हम सब अंतः-पुर में चलें। सूर्यदेव भी अस्ताचल की ओर जा रहे हैं।(लंबी साँस छोड़कर) हे दिननाथ ! तुमको लोग इस राजवंश का आदि-पुरुष कहते है, इसीसे क्या तुम भी मुझ अभागे का दुःख देखकर मलिन हो चले हो ?

(सबका प्रस्थान; कृष्णकुमारी का फिर प्रवेश)

कृष्ण०—(टहलते हुए स्वगत) आहा, एक समय वह था, और एक समय यह है ! मैं क्यों वृथा फिर यहाँ आई ? यह सब क्या अब मुझे अच्छा लगता है ? (लंबी साँस छोड़कर) आहा, मैंने दुलार के मारे इस मल्लिकापुष्प का वन-विनोदिनी नाम रक्खा था, और इस सुंदर शमी-वृक्ष को अपनी सहेली का पद दिया था ! (चौंककर) यह क्या ? आहा, सखी मल्लिका, क्या तुम इस अभागिन का दुख देखकर लंबी साँस छोड़ रही हो ? मलय-पवन

तुम्हारा एकांत अनुगत भक्त है। वह सदा तुम्हारे साथ मधुर प्रेम-संभाषण करता रहता है। तुम सुखी होकर कैसे दूसरे के दुख को समझ सकोगी? (कुछ देर सोचकर) हाय-हाय! वह मायाविनी दूती कैसी बुरी घड़ी में इस देश में आई थी? कैसा आश्चर्य है! मैंने जिसे कभी देखा नहीं, जिसका नाम भी कभी नहीं सुना, जिससे कभी बात भी नहीं की, उसी के लिये मेरा चित्त क्यों इतना चंचल हो रहा है? केवल दूती के कहने से ही मेरा मन इतना रीझ गया? हाय! मैंने वह चित्रपट क्यों देखा? क्यों मैंने वह मनोहर मूर्ति अपने हृदय में स्थापित की? लोग कहते हैं, मरुदेश बिलकुल ऊसर है। वहाँ पृथ्वीदेवी सदा विधवा का वेश धारण किए रहती हैं—फूल-फल आदि का अलंकार नहीं धारण करतीं। किंतु कैसा आश्चर्य है! मुझे वही देश नंदन-कानन मालूम पड़ रहा है! मैं उस देश को देखने के लिये बहुत ही उत्सुक हो रही हूँ! (लंबी साँस छोड़कर) एक बार जाकर देखूँ, उस दूती का कुछ पता लगा या नहीं। (टहलकर—चौंककर) यह क्या? यह बाग़ एकाएक इस तरह पद्म-गंध से परिपूर्ण कैसे हो गया? (भय के साथ) आश्चर्य है! मेरी गति क्यों रुक गई? पैर जैसे किसी ने पकड़ लिए! मेरे सब अंग क्यों काँप रहे हैं? (नेपथ्य की ओर आकाश मार्ग में देखकर) वह क्या है—वह—वह—वह? (मूर्छित हो जाती हैं—आकाश में बाजों की कोमल ध्वनि होती है)

(वेग से तपस्विनी का प्रवेश)

तप०—(स्वगत) कैसा सर्वनाश! कैसा सर्वनाश! (कृष्णा को गोद में लेकर) यह क्या हुआ? कैसा सर्वनाश! मैं इधर से जा रही थी, यही अच्छा हुआ। उठो बेटी, उठो। ऐसा क्यों हुआ?

कृष्ण०—(निद्रा की ही दशा में) देवी, आप ये मीठी बातें फिर कहिए, मैं अच्छी तरह सुनूँ। क्या कहा ? आहा!—"जो युवती इस उच्च और माननीय कुल के मान की रक्षा के लिये अपने प्राण दे देती है, उसे स्वर्ग में असीम आदर और सुख मिलता है।" आहा माता, इस अभागिन के भाग्य में क्या ऐसा गौरव और सुख बदा है?

तप०—यह क्या बेटी ? यह क्या बकती हो ? (स्वगत) हाय-हाय! विधाता की यह कैसी विडंबना है! एक तो राक्षसी बेला, उस पर राजकुमारी की नई जवानी की अवस्था। कौन जाने किसकी दृष्टि—

कृष्ण०—(उठकर संभ्रम के साथ) भगवती, आप यहाँ पर कहाँ से आ गई ?

तप०—क्यों राजकुमारी, यह तो तुम्हारा बाग़ ही है।

कृष्ण०—(चारों ओर देखकर) कैसा आश्चर्य है! भगवती, मैं अभी एक ऐसा अद्भुत स्वप्न देख रही थी, जिसे सुनकर आप एकदम सन्नाटे में आ जायँगी।

तप०—क्या स्वप्न था बेटी ?

कृष्ण०—मुझे जान पड़ा कि मैं जैसे किसी सुवर्ण के मंदिर में एक कमल के आसन पर बैठी हुई हूँ। इसी समय एक परम-सुंदरी स्त्री, एक पद्म पुष्प हाथ में लिए, मेरे सामने आकर खड़ी हो गई और कहने लगी—"बेटी, तुम मुझे प्रणाम करो, मैं संबंध में तुम्हारी माता लगती हूँ।"

तप०—उसके बाद ?

कृष्ण०—मैंने उनको प्रणाम किया। उसके बाद उन्होंने कहा—"देखो बेटी, जो युवती इस उच्च और माननीय कुल के मान

"बड़ी सावधानी से रहो। आज किसी को इस नगर के भीतर घुसने मत देना!"

(पृष्ठ ७७)

की रक्षा के लिये अपने प्राण दे देती है, उसे स्वर्ग में असीम आदर और सुख मिलता है। मैं भी इसी कुल की बहू थी। मेरा नाम पद्मिनी है। तुम अगर मेरे-जैसा काम करो, तो मेरे ही समान कीर्ति की भागिनी बनोगी।"

तप०—कैसा सर्वनाश है! चलो बेटी, तुम अंतःपुर में चलो। यहाँ ठहरने की अब ज़रूरत नहीं है। और देखो, तुमने जो यह स्वप्न की-सी बात मुझसे कही, सो और किसी से मत कहना।

(आकाश में कोमल वाद्य-ध्वनि होती है)

कृष्ण०—वह सुनिए भगवती, वह सुनिए!

तप०—कैसा सर्वनाश! बेटी, तुम यह क्या प्रलाप बक रही हो?

कृष्ण०—प्रलाप नहीं है भगवती! सुनिए—सुनिए, कैसी मधुर ध्वनि है! आहा!—

तप०—चलो बेटी, यहाँ ठहरना ठीक नहीं। तुम शीघ्र यहाँ से चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर; नगर का फाटक

(कुछ रक्षकों के साथ बलेंद्रसिंह का प्रवेश)

बलेंद्र०—रघुवरसिंह

१ रक्षक—(हाथ जोड़कर) क्या आज्ञा है वीरवर?

बलेंद्र०—देखो, तुम लोग बड़ी सावधानी से रहो। आज किसी को इस नगर के भीतर घुसने मत देना!

१ रक्षक—जो आज्ञा। आपकी अनुमति के विना इस नगर के भीतर कोई भी पैर नहीं रख सकता।

बलेंद्र०—और, अगर महाराष्ट्र-पति के शिविर में कुछ शार-गुल या गड़बड़ी जान पड़े, तो उसी घड़ी मुझे खबर देना।

१ रक्षक—जो आज्ञा।

बलेंद्र०—(टहलकर, स्वगत) यह महाराष्ट्र-देश का सियार क्या साधारण धूर्त है ? ऐसा अर्थ-पिशाच, अहित-चिंतक, नराधम, डाकू और दूसरा न होगा। लेकिन यह बात अभी तक मेरी समझ में बिलकुल न आई कि सहसा मानसिंह के साथ इस धूर्त डाकू की ऐसी गहरी मित्रता क्यों हो गई ? (सोचकर) इसका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य ही है। अगर ऐसा न होता, तो धूर्त महाराष्ट्र-पति वृथा क्लेश स्वीकार करनेवाला कभी न था। कृष्णा का ब्याह किसी के भी साथ होता, उसमें उसका नफ़ा-नुक़सान क्या था ?

(प्रस्थान)

(नेपथ्य में युद्ध के बाजों का शब्द सुन पड़ता है)

२ रक्षक—रघुवरसिंह

१ रक्ष०—क्या ?

२ रक्ष०—तुमसे भाई मैं एक बात पूछूँगा। तुम सदा हमारे सेनापति बलेंद्रसिंह के पास रहते हो, और राज-परिवार का हाल तुमसे बढ़कर और कोई नहीं जानता।

१ रक्ष०—हाँ जी, राज-परिवार का हाल कुछ-कुछ तो मुझे अवश्य ही मालूम हो जाया करता है। सो तुम क्या पूछना चाहते हो ?

२ रक्ष०—देखो भाई, मैंने सुना था, महाराष्ट्र-पति के साथ हमारे महाराज का मेल हो गया था। फिर अब वह दुष्ट क्यों लौट आया है ?

१ रक्ष०—क्या तुमने इस बारे में अभी तक कुछ भी नहीं सुना ?

२ रक्ष०—ना भाई, मैंने तो कुछ नहीं सुना।

३ रक्ष०—हम तो इस बारे में कुछ भी नहीं जानते।

१ रक्ष०—मारवाड़ के राजा मानसिंह और जयपुर के स्वामी जगतसिंह, दोनों ने हमारी राजनंदिनी को पाने की आशा से अपने दूत भेजे हैं।

३ रक्ष०—हाँ, यह तो मालूम है। मैं यह पूछता हूँ कि महाराष्ट्र-पति इस मामले में हाथ क्यों डालता है ?

१ रक्ष०—हमारे महाराज की संपूर्ण इच्छा यही है कि राजकुमारी का ब्याह जयपुर के राजा जगतसिंह से हो। किंतु महाराष्ट्र-पति राजा जगतसिंह से मनोमालिन्य रखता है, उसके साथ जगतसिंह का झगड़ा बहुत दिन से चला आता है। इसीलिये महाराष्ट्र-पति चाहता है कि राजकुमारी का ब्याह मानसिंह के साथ हो, और इस प्रकार जगतसिंह अपमानित हो।

२ रक्ष०—भला भाई, महाराष्ट्र-पति जो इस ब्याह की दलाली ही करने आया है, तो फिर अपने साथ इतनी सेना और सामंत क्यों लाया है ?

१ रक्ष०—हा: ! हा: ! यह भी तुम्हारी समझ में नहीं आया भाई ? उस मरहठे के समान भिक्षुक दूसरा न होगा। वह जैसा अर्थ-पिशाच है वैसा ही धूर्त है। ठीक कुत्ते का जैसा उसका हाल

है वह तो ऐसी ही गड़बड़ चाहता है। कोई बहाना भर पा जाय; फिर तो छल से, बल से या कौशल से अपनी भिक्षा की झोली भर ही लेता है।

२ रक्ष०—सो तो ठीक है। अच्छा, हमारे महाराज ने इस बारे में क्या कर्तव्य ठीक किया है, कुछ जानते हो?

१ रक्ष०—और क्या ठीक करेंगे? जयपुर के राजदूत को बिदा कर देने की आज्ञा दी है; और दो-चार दिन के भीतर ही महाराष्ट्र-पति से भगवान् एकलिंग के मंदिर में मिलनेवाले हैं। उसके बाद ब्याह के बारे में क्या ठीक होगा, सो कुछ कहा नहीं जा सकता।

३ रक्ष०—अच्छा, तुम क्या यह समझते हो कि जयपुर के राजा इस पर चुप रहेंगे?

१ रक्ष०—कहा नहीं जा सकता। सुना है, राजा जगतसिंह को उतना युद्ध का शौक़ नहीं है। तो भी राजपुत्र ही हैं। इतना अपमान सह नहीं सकते?

३ रक्ष०—भाई देखो, इधर दो आदमी आ रहे हैं।

१ रक्ष०—सब जने सावधान हो जाओ। (नेपथ्य की ओर देखकर) मंत्री जी मालूम पड़ते हैं।

(मंत्री और धनदास का प्रवेश)

मंत्री—रघुवरसिंह!

१ रक्ष०—(हाथ जोड़कर) जी।

मंत्री—सब कुशल तो है?

१ रक्ष०—जी हाँ, सब कुशल है।

मंत्री—अच्छा। (धनदास से) ज़रा इधर तो आइए।

धन०—मंत्रीजी, आप ही बताइए, यह बात क्या अच्छी हुई ?

मंत्री—क्या कहूँ भाई, महाराज को इसके लिये बड़ा दुःख है। लेकिन करें क्या ? इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। उनकी तो वही " भई गति साँप छछूँदर केरी ।"

धन०—जी हाँ, आपका कहना ठीक है; लेकिन मेरा तो सर्व-नाश ही हो गया। मैं किस बुरी घड़ी में इस देश में आया था ?

मंत्री—क्यों महाशय ?

धन०—क्यों क्या मंत्रीजी; एक तो जो कुछ मेरे पास था, वह सब मरहठे डाकुओं ने लूट लिया। दूसरे राजा मानसिंह के दूत ने मेरा घोर अपमान किया। तीसरे मैं अपने कार्य में भी सफलता नहीं प्राप्त कर सका !

मंत्री—महाशय, जो होना था, सो हो गया। अब इस ख़याल को दूर कीजिए, और अनुग्रह पूर्वक यह अँगूठी स्वीकार कीजिए। महाराज ने पारितोषिक के तौर पर यह अँगूठी आपको दी है।

धन०—महाराज का प्रसाद शिरोधार्य है। (अँगूठी लेता है)

मंत्री—महाशय, आप बहुत चतुर और बुद्धिमान् हैं। इस कारण आपसे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। आप महाराज जगतसिंह को इस मामले में शांत होने की सलाह दीजिएगा। यह अपने घर में लड़ने-झगड़ने का समय नहीं है। इस समय आत्म-विच्छेद से दोनों पक्ष की हानि होने की संपूर्ण संभावना है। (कुछ सोचकर) देखिए, आप अगर महाराज जगतसिंह को शांत कर देंगे, तो हमारे महाराज आपको ख़ूब पारितोषिक देकर संतुष्ट करेंगे।

धन०—जो आज्ञा। मैं भरसक चेष्टा करने में कोई बात उठा न रक्खूँगा। उसके बाद कृतकार्य होना या न होना जगदीश्वर के हाथ में है।

मंत्री—मैंने कर्मचारियों को आज्ञा दे दी है। मार्ग में आपको किसी तरह की असुविधा न होगी, कष्ट न होगा।

धन०—अच्छा, तो अब मुझे आज्ञा दीजिए।

मंत्री—बहुत अच्छा।

(मंत्री का प्रस्थान)

धन०—(स्वगत) देखूँ, अँगूठी कैसी है ? (देखकर) वाह, यह तो एकदम अनमोल है ! इसका नग लाख रुपए से कम का न होगा। हाः-हाः ! धनदास का जैसा भाग्य किसका होगा ? मट्टी छूने से सोना हो जाती है। हाः-हाः-हाः ! विधाता जिसे बुद्धि देते हैं, उसे सब कुछ देते हैं। (सोचकर) इस विवाह में कृतकार्य न हो सकने के कारण महाराज असंतुष्ट होंगे, तो हुआ करें। न होगा, मैं उनका राज्य छोड़कर और किसी राज्य में रहूँगा। अब धनदास के पास धन की कमी नहीं है। हाः-हाः ! बुद्धि के बल से धनदास आज धनपति है। केवल एक रुकावट देख पड़ती है—विलासवती की आशा छोड़नी पड़ेगी। जिस मृग को ताककर मैं इतने दिन वन-वन फिरा, उसे इस समय हाथ में पाकर कैसे छोड़ जाऊँ ? (सोचकर) छोड़ क्यों जाऊँ ? मैं इतना चतुर होकर क्या एक मामूली वेश्या को अपने फंदे में न फँसा सकूँगा ? अनेक लोग यक्षिणी वश करते हैं, मैं क्या एक वेश्या को न वश कर सकूँगा ? हाः-हाः ! अच्छा, देखूँ, अंत को क्या होता है।

(प्रस्थान)

१ रक्ष०—(आगे बढ़कर) अजी, तुम लोग इसको पहचानते हो ?

२ रक्ष०—हाँ, मैं पहचानता हूँ। यह जयपुर का दूत है। आह ! एक दिन रात को इस पाजी ने मुझे इतना हैरान किया था कि मैं ही जानता हूँ।

३ रक्ष०—क्यों हैरान किया था ?

२ रक्ष०—भाई, इनाम के लालच में पड़कर मैं इसके साथ मारा-मारा फिरा था। मदनिका नाम की किसी औरत की खोज करने यह आया था। रात भर इसके साथ फिरता रहा, मगर मदनिका के घर का पता न लगा। सबेरे अपने डेरे पर लौटने के समय इस पाजी ने चार आने पैसे मेरे हाथ में रखकर खीसें निकाल दीं, और कहा—"भाई माफ़ करना, और लड़कों के लिये इन पैसों की मिठाई मोल ले लेना।" मेरे बदन में जैसे आग लग गई। मगर मूर्खता अपनी ही थी, इसी से चुप हो रहा।

१ रक्ष०—(आकाश की ओर देखकर) भाइयो, सबेरा हो गया—अब पहरा बदलने का समय आ गया है।

(नेपथ्य में गीत सुन पड़ता है)

बीत गई रात, प्रात जागे नर-नारी।
प्रियतम दिननाथ देखि, पद्मिनी प्रफुल्ल भई,
खोलत मुख टारि-टारि अंधकार-सारी;
डाह सों मलीन चंद, देखि भयो अस्त, पवन
चलत, मनौं साँस लेत ठंडी, दुख भारी।
मधुकर मधु हेत फिरत, फूलन के बाग बीच,
सौरभ छिति छाय रही फूलन की न्यारी;

चहकि उठे मधुर सुरन, पत्तीगन भए मगन,
स्वर्ण-छटा छिटकि रही सूर्य-कर-सँवारी।

३ रक्ष०—आओ, अब हम लोग चलें।

(नेपथ्य में रण-वाद्य बजते हैं)

१ रक्ष०—हाँ, चलो, हमारी जगह पर दूसरे रक्षकों का दल पहरा देने आ गया।

(सबका प्रस्थान)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—जयपुर का राजभवन

(राजा और मंत्री)

राजा—क्या कहते हो मंत्री, यह खबर तुमको किसने दी ?

मंत्री—महाराज, धनदास खुद आज तीसरे पहर या कल सबेरे आकर हाज़िर होगा। उसके मुँह से ये सब बातें सुनकर आपको विश्वास आ जायगा।

राजा—कैसी आफत है ! मैं क्या तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं करता ? मैं तुमसे यही पूछता हूं कि तुमने यह खबर किसके मुँह से सुनी है।

मंत्री—महाराज, मैंने अपने ही एक जासूस के मुँह से यह बात सुनी है। वह आदमी बहुत ही विश्वसनीय है।

राजा—हूँ ! तो राना भीमसिंह ने मेरा अनादार करके मानसिंह को ही अपनी कन्या देने का निश्चय कर लिया है ?

मंत्री—जी, मैंने सुना है, महाराना भीमसिंह आपके ही पक्षपाती हैं, और आप पर अत्यंत स्नेह भी रखते हैं। इस समय दबाव में पड़कर, विवश होकर, आपके विरुद्ध काम करनेवाले हैं। मैंने तो पहले ही महाराज के सामने यही निवेदन किया था; लेकिन मेरे दुर्भाग्य से उस समय आपने धनदास की ही सलाह सुनी।

राजा—ओह ! जो बीत गया, उसके लिये सोच करने से क्या लाभ ?

मंत्री—जी हाँ, यह ठीक है। मेरे कहने का मतलब यह है कि इस बखेड़े की जड़ वही है। उसने केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिये इस विषवृक्ष का बीज बोया !

राजा—क्यों ? इसमें उसका अपराध क्या है ?

मंत्री—जी, सो मैं आपसे क्या कहूँ। आप तो धनदास के चरित्र को अच्छी तरह जानते नहीं हैं।

राजा—मैं यह कुछ सुनना नहीं चाहता। तुम यह बताओ, इसमें धनदास का क्या अपराध है ?

मंत्री—महाराज, उसने राजकुमारी कृष्णा का चित्र लाकर आपको क्यों दिखाया था, सो क्या अब भी आपको समझ में नहीं आता ?

राजा—मेरी समझ में तो कुछ नहीं आया। क्यों दिखाया था—तुम्हीं बताओ।

मंत्री—वह चित्र लाकर दिखाने में उसका मतलब यही था कि इस विवाह का प्रस्ताव उठाकर झगड़ा खड़ा कर देना, और उसी सुभीते में खूब माल मारना। इसके सिवा उस समय भी बीस हज़ार अशर्फ़ियाँ उसने पाई थीं। महाराज, वह बड़ा ही स्वार्थपर और नमकहराम है।

राजा—हूँ—इसी से उसने इस मामले में इतनी कोशिश की। उस समय मैं उस धूर्त की चालबाज़ी नहीं समझ सका। अच्छा, जायगा कहाँ ? वहाँ से लौटकर आने दो।—अब यह बताओ कि इस बारे में क्या करना चाहिये ?

मंत्री—महाराज, मेरी समझ में तो इस ख़याल को छोड़ देना ही उचित होगा। इस समय घर में अशांति पैदा करना ठीक न होगा।

राजा—(क्रोध से) कहते क्या हो मंत्री ? तुम पागल तो नहीं हो गए ? ऐसा अपमान भी क्या कोई सह सकता है ? मैं क्यों इस ख़याल को छोड़ दूँ ? मेरे कोष में क्या धन नहीं है ? या देश में सेना नहीं है ? अथवा बाहुओं में बल नहीं है ?

मंत्री—महाराज, राजलक्ष्मी की कृपा से आपके किसी बात की कमी नहीं है।

राजा—तो फिर मुझसे चुप रहने को क्यों कहते हो ? मान से बढ़कर न धन है, न प्राण। छी ! तुम विज्ञ वृद्ध मंत्री होकर मुझसे अपमान सहकर चुप रहने को कहते हो ? ऐसा भी कहीं हो सकता है ? देखो तुम, हरएक गढ़ के अध्यक्ष के पास अभी पत्र भेजो कि पत्र पाते ही वे लोग अपनी-अपनी सेना के साथ नगर में आकर उपस्थित हों। और देखो—

मंत्री—आज्ञा कीजिए।

राजा—तुम जो उस दिन धनकुलसिंह का ज़िक्र कर रहे थे सो वह कौन हैं ? ज़रा समझाकर कहो।

मंत्री—जी, वह मारवाड़ के मृत राजा भीमसिंह के पुत्र हैं। लेकिन उनका जन्म पिता की मृत्यु के उपरांत होने के कारण कुछ लोग कहते हैं कि वह राजा भीमसिंह के पुत्र नहीं हैं।

राजा—हूँ। मारवाड़ का वर्तमान राजा मानसिंह तो गुमान-सिंह का बेटा है। गुमानसिंह धनकुलसिंह के पितामह थे। उनके बड़े भाई का नाम वीरसिंह था। इस कारण धनकुलसिंह ही मार-वाड़ की गद्दी के सच्चे अधिकारी हैं।

मंत्री—महाराज, इस कलिकाल में धर्म-अधर्म का विचार बहुत कम लोग करते हैं। जिसके शक्ति है, उसी की जय होती है। कुमार धनकुलसिंह अब सिंहासन नहीं पा सकते।

राजा—क्यों नहीं पा सकते? अवश्य पा सकते हैं। मैं खुद उन्हें मारवाड़ की गद्दी पर बिठाऊँगा। देखो मंत्री तुम शीघ्र जाकर पत्र लिखो। मानसिंह की इतनी मजाल कि वह मुझसे शत्रुता करे? देखूँ, वह अपने राज्य की रक्षा कैसे करता है?

मंत्री—महाराज!—

राजा—(उठकर) वृथा बातचीत करने से कुछ लाभ नहीं जाओ, आज्ञा का पालन करो।

मंत्री—महाराज, मैं वृद्ध ब्राह्मण हूँ! इसी राजवंश की कृपा से पला हूँ। आपके स्वर्गीय पितृदेव—

राजा—आः! तुमने तो नाक में दम कर दिया! मैं क्या तुम्हें पहचानता नहीं मंत्री, जो तुम नए सिरे से मुझे अपना परिचय दे रहे हो?

मंत्री—जी यह बात नहीं है। मेरा मतलब यह है कि मेरी राय में, इस भयानक गृह-विवाद में सहसा प्रवृत्त होना ठीक नहीं है।

राजा—मंत्री—तुम शायद सठिया गए हो, इसी से ऐसी बातें कर रहे हो। देखो, मनुष्य का जीवन चिरस्थायी नहीं है, लेकिन अपयश सदा बना रहता है। मैं अगर आज यह अपमान सहकर चुप हो जाऊँ, तो आगे चलकर लोग मुझे कायरपन का आदर्श कहेंगे। मेरा धन-बल, जन-बल और प्राण तक इसमें नष्ट हो जायँ, वह भी अच्छा, लेकिन यह बात न कोई कहे कि जयपुर का राजा मारवाड़ के राजा से डर गया! छी छी! उस अपयश से मरने को

मैं हज़ारगुना अच्छा समझता हूँ। तुम जाओ, मेरी आज्ञा के अनुसार काम करो।

मंत्री—(लंबी साँस छोड़कर) जो आज्ञा महाराज। (स्वगत) विधाता के लिखे को कौन मेट सकता है ? हाय ! दुष्ट धनदास के कारण ही यह अनर्थ हुआ ! (प्रस्थान)

राजा—(स्वगत) दूसरा महाभारत छेड़ता हूँ। यह युद्ध साधारण न होगा। अब तक राज्य के सुख भोगने में मग्न हो रहा था, अब तनिक परिश्रम करके भी देखना चाहिए। क्षत्रिय की तरवार बहुत दिन तक म्यान में बंद पड़ी रहने से मलिन और कलंकित हो जाती है। (सोचकर) चाहे जो हो, धनदास को ऐसा दंड दूँगा कि उसे याद रहे। मैंने आज तक जितने कुकर्म किए हैं, सब इसी दुष्ट की प्रेरणा से। वह बड़ा ही धूर्त है, और उसकी बुद्धि भी अद्भुत है। अच्छा, अब चलकर कुछ विश्राम करना चाहिए। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—जयपुर; विलासवती का घर

(विलासवती और मदनिका)

विलास०—वाह, तेरी बुद्धि की बलिहारी ! तूने बड़े भारी धूर्त को छकाया। तू धन्य है !

मद०—(हँसकर) तुम तो मेरी बड़ाई कर ही रही हो, लेकिन मैं भी अपनी बड़ाई कर रही हूँ। मुझे ख़ुद अपने से इतनी आशा नहीं थी। सच तो यह है कि उदयपुर में जो-जो काम मैंने किए, उनकी याद आने पर अब भी हँसी रोके नहीं रुकती। हा:-हा:-

हाः ! धूर्त धनदास को तो मैंने ऐसा छकाया कि आप ही अपनी पीठ ठोकने को जी चाहता है।

विलास०—वही तो बहन ! कैसा आश्चर्य है ! धनदास, जिसकी दृष्टि गिद्ध से बढ़कर है, तुझे नहीं पहचान सका—यही सब से बढ़कर विस्मय की बात है।

मद०—वह धूर्त अगर मुझे पहचान पाता, तो भला यह अँगूठी उतार देता ?

विलास०—अच्छा, तू वहाँ लोगों को अपना परिचय क्या देती थी ?

मद०—यह तो बहुत मामूली चालाकी थी। उदयपुर के लोगों से कहता था, मेरा घर जयपुर में है। जहाँ देखता था कि जयपुर और जोधपुर, दोनों देशों के आदमी हैं, वहाँ जाता ही नहीं था।

विलास०—वाह, तुझमें तो बड़े-बड़े गुन भरे पड़े हैं !

मद०—हाः-हाः-हाः ! राजमंत्री, राजा मानसिंह के दूत, राजकुमारी कृष्णा आदि किस-किससे मैं नहीं मिली ? और वेश तो इतने बदले कि बहुरूपियों के भी कान काट लिए।

विलास०—अच्छा मदनिका, यह तो बता कि राजकुमारी कृष्णा क्या सचमुच अनुपम सुंदरी हैं ?

मद०—आहा ! यह न पूछो। वह सौंदर्य इस पृथ्वी का है ही नहीं। एकदम स्वर्ग की सामग्री है। संसार में तो कृष्णा की जोड़ का रूप नहीं मिल सकता। (लंबी साँस छोड़ती है)

विलास०—यह क्या सखी ? तू लंबी साँस क्यों छोड़ रही है ? एकाएक इस चर्चा से तेरा मुँह क्यों उदास हो गया ? राजकुमारी के रूप ने क्या तुझपर भी जादू कर दिया ?

मद०—क्या कहूँ सखी? राजकुमारी कृष्णा का खयाल आते ही जैसे छाती फटने लगती है। आहा, उस मुखारविंद को जिसने एक बार देख लिया, वह क्या फिर उसे जन्म भर भूल सकता है? सखी, मेरे उदास होने का कारण यही है कि मेरे इस कुचक्र में कुमारी कृष्णा के अनिष्ट होने का पूरा खटका है।

विलास०—तू कहती क्या है? क्या कुमारी कृष्णा सचमुच ऐसी सुंदरी हैं कि उनके अमंगल की आशंका से तेरा हृदय तक विह्वल हो रहा है? कैसा आश्चर्य है?

मद०—केवल रूप ही नहीं, राजकुमारी के गुण और स्वभाव की भी बड़ाई एक मुख से नहीं की जा सकती।

विलास०—तू भई अच्छी तरह राजकुमारी का सब हाल मुझे सुना।

मद०—राजकुमारी का बखान सुनने से तुम्हारा क्या उपकार होगा?

विलास०—सो तो मैं कुछ जानती नहीं, लेकिन जब से तेरे मुँह से राजकुमारी के रूप-गुण का वर्णन सुना है, तब से यही इच्छा हो रही है कि उदयपुर जाकर एक बार उनके दर्शन कर आऊँ।

मद०—मैं तो यही कहूँगी कि जिसने कभी उन्हें नहीं देखा, उसे विधाता ने वृथा आँखें दीं।—खैर, अब यह बताओ कि महाराज कब से तुम्हारे पास नहीं आए?

विलास०—(लंबी साँस छोड़कर) यह दुःख की बात क्या कहूँ—तीन दिन से महाराज के दर्शन नहीं मिले।

मद०—हूँ? तो मैं समझती हूँ, धनदास जिस दिन यहाँ आया है, उसी दिन से राजा साहब भी यहाँ नहीं पधारे। मुझे

जान पड़ता है, इस विवाह की चेष्टा में असफलता और अपने दूत का अपमान होने से महाराज को बड़ा कष्ट पहुँचा है। ऐसा होना स्वाभाविक था। उनके दूत को मैंने बे-तरह अपमानित कराया है—हाः-हाः! भैया धनदास अब इस जन्म में किसी के ब्याह की दलाली करने नहीं जायँगे। हाः-हाः-हाः!

विलास०—महाराज, को नहीं देखा, इसी से बेचैन हो रही हूँ! क्या करूँ? कौन महाराज को यहाँ तक लावे?

मद०—सखी तुम चिंता मत करो। महाराज आज ज़रूर आवेंगे। मगर देखो, आज जो तुमने अपने पैरों पर उनका सिर रखवाए बिना छोड़ा, तो मैं फिर इस जन्म में तुमसे बात नहीं करूँगी।

विलास०—छी-छी! तू यह क्या कहती है? महाराज का सिर मैं अपने पैरों पर रखवाऊँगी? यह भी कहीं हो सकता है?

मद०—होगा क्यों नहीं? बुद्धि होने से सब कुछ हो सकता है। आओ, मैं तुमको मानलीला का अभिनय सिखा दूँ। (बैठकर) देखो, मैं जैसे मानिनी नायिका मान किए बैठी हूँ। अब तुम नायक बनकर मुझे मनाओ।

(आंचल से मुँह ढक लेती है)

विलास०—हाः-हाः-हा! खूब-खूब! तू तो बहुत बड़े-बड़े स्वाँग जानती है! अच्छा बता, अब मैं क्या करूँ?

मद०—(उठकर) कैसी आफ़त है? मैं ही मान करके बैठूँ, और मैं ही मनाने की तरकीब बताऊँ? अच्छा सई तुम्हीं मान करके बैठो, मैं नायक बनकर तुमको मनाऊँ।

विलास०—(बैठकर) अच्छा।

मद०—अब मान करो।

विलास०—अच्छा मान किया।

(आँचल से मुँह ढकती है)

मंद०—हे सुंदरी, तुम्हारे मुखचंद्र को आज मानरूपी राहु ने ग्रस लिया है; यह देखकर मेरा चित्त-चकोर—

(विलासवती हँसती है)

मद०—छी-छी! यह क्या? तुमने तो सब गुड़ गोबर कर दिया! मान के समय कोई हँसता भी है?

विलास०—(नेपथ्य की ओर देखकर) देख-देख, महाराज इधर ही आ रहे हैं।

मद०—हाँ, महाराज ही आ रहे हैं। देखो भई, महाराज के सामने मान करके फिर इस तरह न हँस उठना। मैं अब जाती हूँ। इतने दिन के बाद आज धनदास को पूरा दंड दिलाने का मौक़ा हाथ लगा है। उसे न खो देना। सावधान!

(प्रस्थान। जगत्सिंह का प्रवेश)

राजा—(स्वगत) आज तीन दिन से मैं यहाँ नहीं आया। कैसे आता? मुझे साँस लेने को भी तो फ़ुरसत न थी। इन तीन दिनों में नब्बे हज़ार के लगभग सेना इस नगर में आकर जमा हुई है। कुमार धनकुलसिंह भी आठ-दस हज़ार सेना साथ लेकर आ रहे हैं। एक लाख वीर सेना मेरे पक्ष में है। देखूँ, अब मानसिंह कैसे अपने राज्य की रक्षा करता है?—होगा, इस घर में तो पुष्प-चाप और पंच-शर के सिवा और किसी अस्त्र की चर्चा करना ठीक नहीं। यह भगवान् कंदर्प की रण-भूमि है।—कहाँ, विलासवती कहाँ गई, देख नहीं पड़ती। (प्रकट) अरे भई, वसंत के आने पर भी क्या कोकिला चुप बैठी रहती है? (खंभे की

आढ़ में बैठी हुई विलासवती को देखकर) वाह, प्रिये, तुम इस तरह उदास-भाव से क्यों बैठी हो ? क्या इधर दो-तीन दिन न आने के कारण मुझसे रूठी हुई हो ? (पास बैठकर) देखो प्रिये, तुम कभी यह ख़याल न करो कि मैं ख़ुशी से तुम्हारे पास नहीं आता।— फिर भी तुम चुप हो ! कुछ तो बोलो, मुँह तो खोलो। एकदम पत्थर की मूर्ति बन बैठी हो ? अच्छा भई, जो तुम मुझसे नहीं बोलना चाहती हो, तो मैं लौटा जाता हूँ। मैं सैकड़ों ज़रूरी काम छोड़कर तुम्हारे पास दौड़ा आया, और तुम चुपचाप बैठी हो !

विलास०—जाते क्यों नहीं ? मैं क्या रोकती हूँ ?

राजा—प्रिये, मैंने तुम्हारा क्या ऐसा अपराध किया है, जो तुम आज मेरे साथ ऐसा निठुर व्यवहार कर रही हो ?

विलास०—यह क्या बात है महाराज ? आप ठहरे राजकुल-चूड़ामणि ! उस पर अब राना भीमसिंह के दामाद होंगे ! मैं हूँ एक साधारण—

राजा—तुम मुझसे सचमुच नाराज़ देख पड़ती हो। छी ! यह क्या ? तुम फिर चुप हो रहीं ! देखो, जो आदमी इतना तुम्हारा अनुगत है, उस पर क्या तुमको इस तरह रूठना चाहिए ? (नेपथ्य में बाजे बजते हैं) आहा ! ऐसी मधुर ध्वनि सुनकर भी तुम्हारा क्रोध नहीं शांत होता ?

(नेपथ्य में गान होता है)

अपने समझ देखिए मन में।
जाना इसका सहज नहीं है, मान हुआ जो मन में ;
कंटक-कपट प्रेम को रूँधे, झरते फूल वचन में।

जो तुमको जोबन, जीवन, मन, सब अर्पण कर डाले;
उससे करते छल की बातें हरदम टालेवाले।
नहीं भामिनी बोलेगी अब, लाख मनाओ मुख से;
जाओ, चैन करो, सौतन के रैन बिताओ सुख से।
जो अपराध किया है तुमने, उसकी यही सज़ा है;
पैर पकड़कर राज़ी करिए, राजा, यही रज़ा है।

राजा—हाः-हाः! ठीक है। देखो प्रिये, तुम्हारी सखियाँ मुझे बहुत अच्छी सलाह दे रही हैं। सो आओ, तुम्हारे पैरों पड़कर ही तुमको मनाऊँ। अब तुम मेरे सब अपराध क्षमा करो।

(पैरों पर सिर रखना चाहता है)

विलास०—(व्यग्र भाव से) यह आप क्या करते हैं महाराज? छी-छी! मैं तो आपके साथ केवल दिल्लगी कर रही थी। मैं यह देख रही थी कि महाराज एक साधारण स्त्री के मान को रखते हैं या नहीं।

राजा—अरे भई, यह जान लेनेवाली दिल्लगी तुमने कहाँ से सीखी? भाग्य से इस रोग की दवा मिल गई, इसी से जान बची!—ख़ैर, अब यह बताओ, मान मिटा या नहीं?

विलास०—क्यों प्राणनाथ, क्या अब भी संदेह है?

(मदनिका का फिर प्रवेश)

राजा—आओ-आओ। तुमको देखकर मुझे तो डर मालूम होता है।

मद०—मैया रे! यह आप क्या कहते हैं महाराज?

राजा—तुम सखी, मदनकेतु हो। जहाँ तुम हो, वहाँ लड़ाई ठनते क्या देर लगती है? निरंतर कामदेव की रणभेरी बजती

रहती है, प्रमोद-प्रेमयुद्ध ठन जाता है, और पंचशर की चोटों से लोगों को प्राण बचाना भारू हो उठता है !

मद०—लेकिन आपको उसके लिये क्या चिंता है ? महाराज, आप अगर मदन की चोट से घायल हों, तो उसकी दवा तो आपके पास ही है। ऐसी विशल्यकरणी औषध पास रहते आपको काहे का डर है ?

राजा—हाः-हाः ! शाबास सखी। खूब कहा। तुम तो भई सरस्वती की भी परदादी देख पड़ती हो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। यह लो।

(मोतियों का हार देना)

मद०—(प्रणाम करके) मैं तो महाराज की एक साधारण दासीमात्र हूँ।

राजा०—बैठ जाओ। (मदनिका बैठ जाती है) सखी, तुम धनदास के बारे में उस दिन जो बातें मुझसे कह रही थीं, सो क्या सच हैं ?

मद०—महाराज को अगर मेरी बात पर विश्वास न हो, तो मेरी सखी से पूछ लें।

राजा—यह तो मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है कि धनदास बड़ा ही धूर्त और स्वार्थपर है। लेकिन इस पर मुझे अब भी विश्वास नहीं होता कि उसकी इतनी मजाल भी है।

मद०—महाराज, आप अगर अपनी आँखों से देख लें, अपने कानों से सुन लें, तब तो विश्वास होगा ?

राजा०—हाँ, तब क्यों न होगा ? इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है ?

मद०—अच्छा, तो मैं अभी आकर महाराज को सब दिखाए-सुनाए देती हूँ।

(प्रस्थान)

विलास०—महाराज, दुष्ट धनदास ही सारे अनर्थों की जड़ है।

राजा—इसमें क्या संदेह है। इस ब्याह के लिये मुझे कोशिश करने की क्या ज़रूरत थी? ख़ासकर—(हाथ पकड़कर) ख़ासकर तुम्हारे आगे क्या मैं और किसी का प्यार कर सकता हूँ?

विलास०—यही तो बात है महाराज। यह मीठी-मीठी बातें कहकर ही तो, महाराज, आप लोगों की जाति हम लोगों का चित्त अपने वश में कर लेती है। (पास खिसककर) अच्छा, सच बताइए, इस ब्याह के लिये आपको अब भी आग्रह है या नहीं?

राजा—राम कहो! इस विवाह की मुझे क्या ज़रूरत है? बस, केवल धनदास के अपमान का बदला लेना और अपने मान की रक्षा करना ही इस उद्योग का कारण है।

(मदनिका का फिर प्रवेश)

मद०—महाराज, आप शीघ्र इधर चले आवें, तो अच्छा होगा। धनदास आ रहा है। (विलासवती से) सखी, इस समय महाराज को धनदास की धूर्तता का प्रमाण दिखा दो। (राजा से) आइए महाराज।

राजा—(उठकर) चलो। (दोनों आड़ में हो जाते हैं)

विलास०—(स्वगत) धनदास धूर्तराज है, मगर मदनिका ने आज जो फंदा लगाया है, उससे छुटकारा पाना असंभव है।

(धनदास का प्रवेश)

विलास०—आओ-आओ धनदास। बैठो, कहो, अच्छे तो हो ?

धन०—(बैठकर) अरे अच्छा क्या हूँ पत्थर ! कैसे अच्छा रहूँ, तुम्हीं बताओ ? उदयपुर से लौटकर जब से आया हूँ, तब से एक बार भी महाराज ने मुझे अपने पास नहीं बुलाया। लोगों के मुँह से तरह-तरह की बातें सुन पड़ती हैं। अच्छा बस इतना ही है कि तुमने मुझे नहीं भुलाया।

विलास०—आकाश क्या भई सदा मेघों से ढका रहता है ?

धन०—नहीं, सो तो नहीं रहता। अजी, सच तो यह है कि अगर तुम मेरे इस मेघों से ढके हुए आकाश का पूर्ण चंद्र बनो, तो फिर मेरे बराबर और कौन हो सकता है ?

मद०—(राजा के कान में) महाराज ने सुन लिया ?

राजा—(उसी तरह) चुप रहो।

धन०—(स्वगत) मदनिका मुझसे कई बार कह चुकी है कि विलासवती मन-ही-मन मुझे चाहती है। इस समय इसका भाव देखकर मुझे भी वही जान पड़ता है। (प्रकट) तुम तो भई चुप हो गई ? तुम क्या यह नहीं जानतीं कि मैं तुमको जी से चाहता हूँ ?

विलास०—(लज्जा का भाव दिखाकर) सो भला मैं किस तरह जानती ? मैं कुछ अंतर्यामी तो हूँ ही नहीं।

धन०—यह क्या कहती हो ? तुम क्या यह भी नहीं जानती हो कि मेंढ़क यद्यपि सदा कमलिनी के पास रहता है, लेकिन इस बात को भ्रमर के सिवा और कोई नहीं जानता कि उस पुष्प में

कैसा रस और कितना पराग भरा पड़ा है। तुम क्या चीज़ हो, इस बात को समझना—तुम्हारी क़द्र करना—क्या इन अहमक़ राजों का काम है? हा:-हा:-हा:!

राजा—(मदनिका से) सुनी पाजी की बात? जी चाहता है, इस नराधम का सिर अभी काट डालूँ!

(तलवार खींचना चाहता है)

मद०—यह क्या महाराज? आप करते क्या हैं?

(हाथ पकड़ लेती है)

धन०—विलासवती!

विलास०—क्या कहते हो जी?

धन०—देखो, मैं तुम्हारा ही दास हूँ। मैंने यहाँ राजभवन से जो कुछ पैदा किया है, सो सब तुम्हारा ही है। (स्वगत) इस औरत के पास राजा के दिए हुए जो रत्न हैं, उनके आगे मेरी दौलत क्या चीज़ है। एक बार इस चिड़िया को अपने हाथ में कर लूँ—बस, फिर क्या है—सब माल अपना ही है। इसे इस राज्य से निकालकर ले चलने की कोशिश करना ही अब मेरे जीवन का लक्ष्य है। (प्रकट) तुम तो भई चुप हो रहीं?

विलास०—मैं अब और क्या कहूँ?

धन०—देखो, कल सबेरे तो राजा सेना लेकर मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिये यात्रा करेंगे। सो यह बात तो किसी से छिपी है ही नहीं कि युद्ध-विद्या में वह कितने निपुण हैं। रण-भूमि देखकर बेहोश न हो जायँ, यही ग़नीमत समझो। हा:-हा:-हा:! मैं खूब जानता हूँ, दुनिया-भर में ऐसा बोदा आदमी और न होगा।

राजा—क्या ! इस पाजी की इतनी मजाल !

(मारना चाहता है)

मद०—(राजा को पकड़कर) आप करते क्या हैं महाराज ? तनिक शांत होकर सुनिए। देखिए, अभी और क्या-क्या कहता है।

धन०—मुझे अच्छी तरह विश्वास है कि या तो हमारे राजा साहब इस युद्ध में मारे जायँगे, और या मुँह में स्याही पोतकर घर लौटेंगे।

राजा—(आड़ से) अच्छा देखता हूँ किसके मुँह में स्याही पुतती है ! कृतघ्न !—पाजी !—नमकहराम !

धन०—सो तुम कहो, तो मैं जाकर चलने की तैयारी करूँ। सुंदरी, चलो, हम दोनों जने कल इस देश से चल दें। उस अधम कायर राजा के पास रहने से तुम्हारा क्या उपकार होगा ? तुम्हीं बताओ, बालू के बाँध का क्या भरोसा ?

राजा—(सामने आकर और धनदास की गर्दन पकड़ कर) क्यों रे नमकहराम, पाजी, दासीपुत्र ! क्या यही तेरी कृतज्ञता और कर्तव्य है ? तुझसे सब हो सकता है। तू सोते हुए शरणागत के गले पर छुरी फेर सकता है।

धन०—(भय के भाव से स्वगत) सर्वनाश हो गया ! यह मुझे स्वप्न में भी खयाल न था कि यह यहीं मौजूद हैं। क्या होगा ? क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अब जान नहीं बच सकती ! इस दुराचारिणी कुलटा ने मेरी जान ली !

राजा—बदमाश ! अब चुप क्यों है ? बोल, जवाब दे ! आज मुझे मालूम हुआ कि तू कैसा आदमी है। कोई भी ऐसा निकृष्ट काम

नहीं, जो तेरे लिये असाध्य हो। पृथ्वी पर तुझ-सरीखे विश्वास-घाती, कृतघ्न, कुटिल पुरुष का रहना अच्छा नहीं। (मारने के लिये तलवार उठाता है)

विलास०—(राजा का हाथ पकड़कर) महाराज, यह आप क्या करते हैं ? क्षमा कीजिए। इस तुच्छ कीड़े को हत्या करके इसके अपवित्र रुधिर से अपनी तलवार को कलंकित न कीजिए। सिंह कभी सियार का शिकार नहीं करता। महाराज, मैं इसके प्राणों की भिक्षा माँगती हूँ।

राजा—प्रिये, तुम्हारा अनुरोध मैं नहीं टाल सकता। इसे प्राण दंड नहीं दूँगा। (तलवार म्यान में करके) लेकिन ऐसा दंड अवश्य दूँगा, जिसमें इस पापी का मुँह न देखना पड़े।—द्वारपाल !

(द्वारपाल का प्रवेश)

राजा—देखो, इस दुष्ट को इसी दम नगरपाल के पास ले जाओ और उससे जाकर कहो कि इसका सिर मुड़ाकर, उस पर मट्ठा डालकर, मुँह में स्याही और चूना लगाकर, गधे पर चढ़ाकर नगर में घुमावे और उसके बाद राज्य से निकाल दे। इस पाजी की सारी संपत्ति ग़रीबों और ब्राह्मणों को बाँट दी जाय।

द्वार०—जो आज्ञा धर्मावतार। (धनदास से) चल।

धन०—(हाथ जोड़कर आँखों में आँसू भरकर) महाराज !

राजा—चुप बेहया ! अब मैं तेरी कोई बात नहीं सुनना चाहता ! ले जाओ इसे सामने से ! इसका मुँह देखना भी पाप है !

द्वार०—चल ! (धनदास को लेकर द्वारपाल का प्रस्थान)

मद०—(सामने आकर) बेचारे की जान बच गई, यही गनीमत है। अभी बेचारा चींटी की मौत मर चुका था। हाः-हाः-हाः ! प्रेम जताने आया था, वह क्या जानता था, कि लेने के देने पड़ जायँगे ?

विलास०—मुझसे तो कुछ न होता। यह सब तेरी बुद्धि की ही करामात है। महाराज ने उसे प्राण-दान दे दिया, यही बहुत अच्छा हुआ। नहीं मुझे भी हत्या लगती। मुझे तो यही बड़ी खुशी है कि इतने दिन बाद महाराज की आँखें खुलीं।

राजा—यह दुष्ट मुझे जिन कुराहों में ले गया है, उनको याद करके लज्जा के मारे मैं मरा जाता हूँ। क्या करूँ, केवल तुम्हारे अनुरोध से मैंने इस दुष्ट को जीता छोड़ दिया। नहीं तो इसकी बोटियाँ चील्हों को खिलाकर अपना क्रोध शांत करता।

(नेपथ्य में रण का डंका बजता है और "महाराज की जय हो ! राजकुमार की जय हो !" इत्यादि शब्द सुन पड़ते हैं)

राजा—(चौंककर) जान पड़ता है, कुमार धनकुलसिंह आ गए। प्रिये, अब मुझे जाने की आज्ञा दो। मुझे यात्रा करनी है।

विलास०—यह क्या महाराज ? इतनी जल्दी ? अब फिर कब दासी को दर्शन मिलेंगे ?

राजा—यह मैं किस तरह बताऊँ ? मैं कल सबेरे ही युद्ध की यात्रा करूँगा। अगर जीता बचा, तो फिर मुलाक़ात होगी, नहीं तो इसी को आख़िरी भेंट समझो। (हाथ पकड़कर) देखो प्रिये, अगर मैं मर ही जाऊँ, तो मुझे एकदम न भुला देना। कभी-कभी याद कर लिया करना। और क्या कहूँ ?

(विलासवती चुपचाप रोती है)

मद०—महाराज, यह आप क्या कहते हैं ? आप शत्रुओं को परास्त करके बहुत जल्द लौटेंगे।

राजा—सखी, यह साधारण युद्ध नहीं है। भारत के सब बड़े राजा इस युद्ध में जमा होंगे। खैर, जो होना होगा, सो होगा। विलासवती, प्रिये, अब मुझे हँसकर बिदा करो।

मद०—आओ सखी, महाराज के साथ द्वार तक चलो। अब रोने से क्या होगा बहन ? परमेश्वर से यही प्रार्थना करो कि हमारे महाराज सकुशल लौट आवें।

(सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—जयपुर; नगर का सिरा; सड़क; सामने मंदिर

(मंदिर के ऊपर खिड़की में विलासवती और मदनिका)

मद०—अब क्यों देर कर रही हो सखी ? दोपहर हो गई, घर चलकर स्नान-भोजन आदि करना चाहिये। हम देव-दर्शन के बहाने यहाँ तक आई हैं। अधिक देर तक यहाँ ठहरने से लोग न-जाने क्या कहें।

(नेपथ्य में युद्ध का डंका बजता है)

विलास०—वह सुन सखी, महाराज शायद फिर लौटे आ रहे हैं।

मद०—तुम्हारी अभिलाषा तो यही है। मगर ऐसा कहीं हो सकता है ? अच्छी तरह देखो, कौन आ रहा है ?

विलास०—सखी आँसुओं के मारे मुझे तो कुछ सूझ नहीं पड़ता ? कौन आ रहा है ? मुझे तो सूझता ही नहीं।

कर सकता है ? मेरे तो दो ही आँखें हैं, भगवान सहस्रलोचन इंद्र भी शायद न कर सकें।

(प्रस्थान)

विलास०—मदनिके, चल बहन, हम इन रसद की गाड़ियों के पीछे पीछे महाराज के पास चलें।

मद०—तुम सखी पागल हो गई हो क्या ? चलो, घर चलो। देखो, दोपहर ढल गई। अब हमारा यहाँ ठहरना ठीक नहीं।

विलास०—घर में जाकर क्या करूँगी ? मेरा तो घर जाने को जी नहीं चाहता।

मद०—हाः-हाः-हाः ! तुम तो आज कृष्णयात्रा की लीला करने लगीं। सखी, कृष्ण मथुरा को जाते हैं, उनसे गोकुल में कैसे रहा जाय ? हाः-हाः-हाः ! क्यों न ? आओ श्री राधिका यमुना-तट पर अकेले बैठकर रोने से क्या होगा ? तुम्हारे वंशीधर इस समय मथुरा में जाकर दूसरों से केलि करेंगे। हाः-हाः-हाः !

विलास०—छी-छी ! ऐसी यह दिल्लगी मुझे अच्छी नहीं लगती।

मद०—(नेपथ्य की ओर देखकर) यह कौन ? धनदास है क्या ? हाँ वही तो है। (नीचे दरिद्र-वेष से धनदास का प्रवेश)

धन०—(चारों ओर देखकर स्वगत) हाय विधाता ! तुम्हारे मन में क्या यही था ? अब तक राज-भवन की बदौलत तरह-तरह के सुख भोगकर अंत को अन्न का अभाव देखना पड़ा ! भूख के मारे पेट की ज्वाला मिटाने के लिये कुत्ते की तरह द्वार-द्वार फिरना पड़ा ! लेकिन इसमें तुम्हारा ही क्या दोष है ? यह तो सब

मेरे कर्मों का दोष है। पाप-कर्मों का फल ऐसा ही हुआ करता है। हाय-हाय ! लोभ के फेर में पड़कर मनुष्य ज्ञान-हीन हो जाता है। ऐसा न होता, तो रामचंद्र सीता को छोड़कर सुवर्ण-मृग का पीछा क्यों करते ? इसी लोभ के वश होकर मैंने न-जाने कितने कुकर्म किए हैं ! (रोता है) पतित पावन प्रभो ! मेरे इन आँसुओं के जल से मेरी पाप-पंकिल आत्मा को धो दो ! (रोता है) हाय-हाय ! मुझे अगर पहले यह ज्ञान होता, तो यह दुर्दशा क्यों होती ? (रोता है)

मद०—सखी, इस समय धनदास की यह दशा देखकर मुझे जैसा दुःख हो रहा है, वैसा दुःख और कभी नहीं हुआ। तुम तनिक देर यहीं ठहरो—मैं जाकर इससे दो-एक बातें कर आऊँ।

(प्रस्थान)

धन०—(स्वगत) धन-संचय के लिये लोग क्या-क्या नहीं करते ? लेकिन वह धन किसी के साथ नहीं जाता। हाय ! आश्चर्य तो यही है कि लोग इस सहज, सरल, सत्य को प्रत्यक्ष देखकर भी क्यों नहीं समझ पाते ? मुझको ही देखो, मैंने इतना सब कुछ करके जो धन-रत्न जमा किए थे, वे कहाँ चले गए ? कौन उनका सुख भोगेगा ?

(मदनिका का प्रवेश)

मद०—धनदास, तुम यहाँ कहाँ ?

धन०—(चौंककर) ऐं—कौन ? मदनिका ? (स्वगत) और भी क्या कुछ यंत्रणा बाक़ी है ? (प्रकट) देखो मई, जहाँ तक दंड दिया जा सकता था, सो तो मैं पा चुका। अब तुम फिर क्यों—

मद०—ना, ना, तुम डरो नहीं। अब मैं तुम्हारी बुराई नहीं करूँगी। मैं तुमको कैसे बताऊँ कि तुम्हारा दुःख देखकर मुझे कितना दुःख हुआ है? धनदास, यह सच है कि मैं सती स्त्री नहीं हूँ, फिर भी मेरा हृदय स्त्री का ही है। हज़ार कुछ हो, पराया दुःख देखकर मुझसे रहा नहीं जा सकता। ख़ैर, जो होना था, सो हो गया। अब लो, मैं तुमको यह अँगूठी देती हूँ।

धन०—(अँगूठी देखकर, चौंककर) एँ! भला यह अँगूठी तुमने कहाँ पाई?

मद०—क्यों? तुमने ही तो मुझे दी थी भई! भूल गए क्या? उदयपुर के मदनमोहन की याद बनी है या नहीं?

धन०—एँ, क्या नाम बताया?

मद०—मदनमोहन, जिसने तुमसे मदनिका को दिखाने का वादा किया था। आज वह वादा पूरा हो गया। देखो, मैं ही वह मदनिका हूँ।

धन०—तो क्या तुम उदयपुर गई थीं?

मद०—अरे भई, किस तरह कहूँ? मैं वहाँ न जाती तो यह सब घटनाएँ कैसे घटतीं? धनदास! तुमने सोचा था कि तुमसे बढ़कर धूर्त और चालाक इस दुनिया में दूसरा नहीं है—क्यों? अब तो तुम्हें मालूम हो गया कि दुनिया में एक से बढ़कर एक पड़ा हुआ है? सोचकर देखो भाई, तुम कितने बड़े दुष्ट थे? ख़ैर, वह चाहे जो हो, तुम यथेष्ट दंड पा चुके। अब अगर तुम्हारी वह दुष्ट-बुद्धि दूर हो गई हो, तो मेरे साथ आओ। देखूँ, जिसे बिगाड़ा है, उसे फिर बना सकती हूँ या नहीं।

धन०—तुम्हारी बातें सुनकर मैं तो भाई, सन्नाटे में आ गया ! तो वह छोकरा मदनमोहन तुम्हीं थीं ? कैसा आश्चर्य है ! उस समय वहाँ तुमको मैं तनिक भी नहीं पहचान सका।

मद०—आओ, तुम मेरे साथ आओ। वह देखो, विलासवती ऊपर खड़ी हैं। मगर भाई, अब उनके आगे प्रीति की रीति न बखानने लगना। और एक बात याद रक्खो, इस जन्म में किसी स्त्री का अपमान न करना। स्त्री की जाति को तुच्छ समझने का फल तो तुमने देख ही लिया—क्यों ? हाः-हाः-हाः ! (विलासवती से) आओ सखी, उतरो। चलो धनदास।

(सबका प्रस्थान)

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुर का राजभवन

(राना भीमसिंह और मंत्री का प्रवेश)

राना—कैसा सर्वनाश है ! अच्छा फिर ?

मंत्री—जी, राजा मानसिंह ने तलवार छूकर प्रतिज्ञा की है कि वह कुमारी राजकुमारी कृष्णा से ब्याह करेंगे, और ऐसा न हुआ, तो उदयपुर को नष्ट-भ्रष्ट करके महाराना के राज्य को गर्द-गर्द कर डालेंगे। उधर राजा जगत्सिंह ने भी ऐसी ही दारुण प्रतिज्ञा की है।

राना—(क्षोभ और घृणा के साथ) हूँ ? इस कलिकाल में लोग इसी को वीरता कहते हैं ? (मस्तक पर हाथ दे मारकर) हाय ! मुर्दे के ऊपर कौन नहीं तरवार का वार कर सकता ? मेरी अगर ऐसी अवस्था न होती, तो क्या ये लोग इस तरह दर्प करके दबाव डालने का साहस कर सकते ? देखो, मेरे खज़ाने में इस समय धन का अभाव है, सेना में वीर पुरुषों की कमी हो गई है। इस समय मैं चक्रव्यूह के भीतर सात महारथियों के बीच घिरे हुए निरस्त्र अभिमन्यु की दशा को प्राप्त हूँ। इसलिये अगर वे मेरा सर्वनाश करें, तो कोई विचित्र बात नहीं।—हा विधाता ! यह अपमान और कितने दिन तक मुझे सहना पड़ेगा ? यमराज कब तक मुझे अपने पास बुलावेंगे ?

मंत्री—महाराज, आपके यों अधीर होने से—

राना—तुम कहते क्या हो मंत्री ? ऐसी बातें सुनकर कौन स्थिर रह सकता है ? मारवाड़ के राजा कौन हैं, जो मुझ पर दबाव डालते हैं ? राजा जगतसिंह भी इस समय अपने को भूल गये हैं, यह भी कम आश्चर्य नहीं ! (टहलकर) उदयपुर-राज्य की अवस्था अगर पहले की ऐसी होती, तो क्या ये लोग इस तरह अकारण आक्रमण करने की धमकी दे सकते थे !

मंत्री—(स्वगत) हाय ! यह क्या इस तरह क्रोध करने का या चिढ़ने का समय है ? इस समय हमारे राज्य की क्या ऐसी अवस्था है कि हम शत्रुओं को कटु वचन कहकर चिढ़ावें ? (लंबी साँस लेकर) हा ! कौन जानता था कि कुमारी कृष्णा के ब्याह के लिये ऐसा झगड़ा उठ खड़ा होगा !

राना—(बैठकर) मंत्री, बैठ जाओ ।

मंत्री—जो आज्ञा महाराज ।

(बैठता है)

राना—बताओ, अब क्या कर्तव्य है ? मुझे तो इस विपत्ति-सागर का किनारा किसी ओर नहीं देख पड़ता । (लंबी साँस लेकर) मंत्री, तुम तो यह अच्छी तरह जानते हो कि इस राजसिंहासन पर जब से बैठा हूँ, तब से कितना सुख भोग सका हूँ । सदा चिंता की चिता में जलने के सिवा कभी सुख से नहीं सोया । मैंने ऐसा कौन भारी अपराध किया है, जो इस समय विधाता इस तरह प्रतिकूल हो उठे हैं ? यह मणिमय राजमुकुट मुझे इस समय अग्नि-पिंड-सा जान पड़ता है ! हाय—यमराज क्या मुझे भूल गए ? यह कुमारी कृष्णा मेरे घर क्यों पैदा हुई ?

मंत्री—महाराज, इस सूर्य-वंश के राजा-लोग अपने कुलमान की रक्षा के लिये जो-जो दुष्कर कर्म कर गए हैं, उन्हें याद कीजिए ? इतना अधीर होना आपको नहीं सोहता।

राना—मंत्री, तुम इस समय मेरे पूर्वजों की बातें याद करा रहे हो, मगर सोचकर देखो तो, प्रकाश से अंधकार में आने पर वह अंधकार और भी अधिक जान पड़ता है ! वैसे ही पूर्व-पुरुषों की कीर्तियों का स्मरण करने के बाद यह दुःख और भी अधिक असह्य हो उठता है, और तब घड़ी-भर भी जीने को जी नहीं चाहता।

मंत्री—महाराज—

राना—हाय ! इस पवित्र शैलराज के वंश में मुझ-सा का-पुरुष निर्बल और कौन पैदा हुआ ? बहेलिए के डर से सियार बिल में घुसा रहता है; लेकिन सिंह का भी क्या वही ढंग होना चाहिए ?

(बलेंद्रसिंह का प्रवेश)

राना—आओ भैया, बैठो। तुमने सब समाचार सुना ?

बलेंद्र०— (बैठकर) जी हाँ, मंत्री से सब सुन चुका हूँ। और, मैंने भी इधर जो कई दूत भेजे थे, उनमें से तीन लौट आए हैं। यवन-पति अमीरखाँ और महाराष्ट्र-पति माधवजी, दोनों राजा मानसिंह के पक्ष में हो गए हैं।

राना—यह क्या ? अमीरखाँ तो कुमार धनकुलसिंह के पक्ष में था।

बलेंद्र०—जी हाँ, पहले था। पीछे धोका देकर दग़ाबाज़ी से धनकुलसिंह को मार डाला, और अब मानसिंह के पक्ष में हो गया।

राना—ओफ़ ! ये यवनमात्र विश्वासघाती और दग़ाबाज़ देख पड़ते हैं। दग़ाबाज़ी तो मानों यवन-कुल का प्रकृति-गत गुण है।

मंत्री—इसमें क्या संदेह है महाराज। भारतवर्ष में यवनों की दग़ाबाज़ी के सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं।

राना—अच्छा बलेंद्रसिंह, जयपुर से क्या ख़बर आई है ?

बलेंद्र०—जी, राजा जगतसिंह भी प्राण-पण से युद्ध की तयारी कर रहे हैं। अनेक राजपूत सामंत और भी उनकी सहायता के लिये जमा हुए हैं।

मंत्री—हाय-हाय ! इस युद्ध में न जाने कितने क्षत्रिय चारों ओर से आकर शामिल होंगे, और भाई की तलवार भाई का ख़ून बहावेगा। सागर में तूफान आने पर जैसे जल कभी शांत नहीं रह सकता, वैसे ही इन बड़े राज्यों में युद्ध की आँधी उठने पर छोटे-छोटे राज्य भी चुप नहीं रह सकते।

राना—सो तो ठीक ही है। अब बताओ बलेंद्रसिंह, हम लोगों को क्या करना चाहिए ? इस विपत्ति से इस राज्य को बचाने का उपाय क्या है ?

बलेंद्र०—जी, मैं क्या बताऊँ ? बहुत कुछ सोचकर भी कोई उपाय नहीं ठीक कर सका। मैं महाराज का या स्वदेश का हित करने में प्राण तक देने को तैयार हूँ। मगर यह अवश्य कहूँगा, और महाराज भी अच्छी तरह जानते हैं, कि इस विपत्ति से छुटकारा पाना मनुष्य-शक्ति से परे है। दोनों ओर से दो बड़ी सेनाएँ हम पर आक्रमण करेंगी। हमारी इस समय जैसी अवस्था है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि हम एक शत्रु की सेना को भी रोक नहीं सकते। फिर भी मैं यही प्रतिज्ञा करता हूँ कि

जब तक इस शरीर में प्राण रहेंगे, तब तक कर्तव्य का पालन करने से मुँह न मोड़ूँगा। इस समय देवगण—

राना—भाई, अब क्या वह युग है, जब देवगण मनुष्यों का दुःख देखकर करुणा करते थे? घोर कलिकाल के प्रताप से इस समय देवगण भी अंतर्द्धान-से हो गए हैं। इस समय भी चंद्र-सूर्य का उदय केवल विधाता के अलंघनीय विधान के बल . होता है।

बलेंद्र०—अगर आप आज्ञा दें, तो, न हो, एक बार शत्रु-पक्ष से भिड़कर देखूँ, विधाता ने हमारे भाग्य में क्या लिखा है।

राना—(लंबी साँस लेकर) भाई, भिड़कर देखने की कोई ज़रूरत नहीं है। यों ही इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि असंख्य शत्रु-सेना से भिड़कर हमारी और हमारे देश की क्या दशा होगी। अगर कोई व्यक्ति यह कहकर कि देखूँ, विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिखा है, किसी ऊँचे पर्वत पर से कूद पड़े, या जलती आग में घुस जाय, तो विधाता ने उसके भाग्य में क्या लिखा है, यह सभी घड़ी प्रकट हो जायगा।

बलेंद्र०—जी हाँ यह सच है, मगर फिर उपाय क्या है? शत्रु-पक्ष जब आक्रमण करेगा, तब तो हमें विवश होकर भिड़ना ही पड़ेगा।

मंत्री—(बलेंद्रसिंह से) आप ज़रा इस पत्र को तो पढ़िए।

(पत्र देता है)

राना—यह पत्र कैसा है मंत्री?

मंत्री—महाराज, यह पत्र मुझे कल रात को मिला था। लेकिन बहुत खोज करने पर भी मैं यह पता न लगा सका कि पत्र कहाँ से किसने लिखा है, या कौन दे गया है।

बलेंद्र०—(पढ़कर) कैसा सर्वनाश ! राम-राम-राम ! शिव-शिव ! यह बात तो ज़बान पर भी नहीं लाई जा सकती !

राना—क्यों भाई ? मामला क्या है ?

बलेंद्र०—जी, मैं यह बात अपनी ज़बान पर भी नहीं ला सकता। अगर आपकी इच्छा हो, तो ख़ुद पढ़कर देखिए। ऐसी बात आपको सुनाना मेरी शक्ति के बाहर है।

(राना के हाथ में पत्र देता है)

मंत्री—बात तो बेशक बड़ी भयानक है; लेकिन—

बलेंद्र०—राम ! राम ! यह चर्चा मत करो ! छी-छी ! यह भी कोई बात है !

मंत्री—(बलेंद्रसिंह से धीरे से) सेनापतिजी, आप ग़ौर करके देखिए, आई हुई विपत्ति को दूर करने का उपाय इसके सिवा और क्या है ? यह ज़रूर है कि दवा बड़ी कड़ी है, मगर इसके सिवा इस रोग की दूसरी दवा नहीं है।

बलेंद्र०—मैंने ख़ूब ग़ौर करके देख लिया मंत्री। यह काम भी कहीं मनुष्य से हो सकता है !

मंत्री—जी मेरा मतलब यह है कि कुल के मान की रक्षा करना मनुष्यमात्र का प्रधान कर्म है, फिर इस पवित्र सूर्य-वंश के लिये तो कुछ कहना ही नहीं। क्षत्रियों की रीति आपसे छिपी नहीं है। पद्मिनी इत्यादि सैकड़ों राजपूत-ललनायें इसी उपाय से अपने कुल के मान की रक्षा करके अमर हो चुकी हैं।

राना—(पत्र पढ़ने के बाद दम-भर चुप रह कर एक लंबी साँस छोड़कर) मंत्री !

मंत्री—जी धर्मावतार !

राना—यह पत्र तुमको किसने लिखा ?

मंत्री—सो तो महाराज मैं बता नहीं सकता !

राना—देखो मंत्री, इस चिकित्सक ने बहुत कड़वी औषध की व्यवस्था अवश्य की है, लेकिन रोग को मिटाने की प्रक्रिया में सिद्धहस्त जान पड़ता है। (लंबी साँस लेकर चुप रहते हैं)

मंत्री—जी हाँ महाराज। और जान पड़ता है, इसके सिवा यह रोग दूर करने का दूसरा कोई उपाय भी नहीं है।

राना—बलेंद्र !

बलेंद्र—जी !

राना—(लंबी साँस छोड़कर) भाई, क्या होगा ?

बलेंद्र०—महाराज, यह पत्र मुझे दीजिए, मैं इसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दूँ। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह किसी शत्रु के हाथ का लिखा पत्र है। यह काम तो एक क़साई भी नहीं कर सकेगा !

राना—तुम क्या कहते हो मंत्री ?

मंत्री—महाराज, विपत्ति का समय उपस्थित होने पर लोग रक्षा के लिये अपना हृदय फाड़कर देव-पूजा में रक्त देते हैं।

राना—तुम्हारा कहना सच है मंत्री ! लेकिन अपनी छाती फाड़कर रक्त देने में और इस कर्म में बड़ा अंतर है।

मंत्री—जी, ठीक है। उस यातना की अपेक्षा यह यंत्रणा बहुत अधिक है। लेकिन विचार कर देखिए महाराज, इस समय आपके देश-भर के सर्वनाश की संभावना उपस्थित है। सर्वनाश की अपेक्षा—

राना—बस-बस मंत्री ! अब कुछ न कहो। मेरे शरीर में रोमांच हो रहा है, आँखों के आगे अंधकार छाया हुआ है !

ओह! यह क्या हुआ! हाय परमेश्वर! ना-ना-ना। यह भी कहीं हो सकता है?

मंत्री—महाराज, सोचकर देखिए—सैकड़ों राजकुल की सती ललनाएँ इस वंश के मान की रक्षा के लिये अग्निकुंड में हँसते-हँसते फाँदकर जल मरी हैं। इसके सिवा राजा पर बड़ी ज़िम्मेदारी होती है; वह सारी प्रजा का पिता होता है! एक प्राण के मोह में पड़कर हज़ारों प्राणों को नष्ट करना उसे उचित नहीं। इस पर भी विचार कीजिए।

राना—तुम्हारा यह कथन बहुत ठीक है। लेकिन मैं उस अद्भुत निठुर हत्या के बारे में किसी तरह सम्मत नहीं हो सकता। रानी इससे कितना दुःखित होंगी—यह भी तो सोचो। हम लोग मर्द हैं, सब सह सकते हैं; लेकिन स्त्रियाँ कभी नहीं सह सकतीं। इस हत्याकांड का हाल सुनकर रानी अवश्य अपने प्राण दे देंगी।

मंत्री—मगर उन्हें यह समाचार दिया ही क्यों जाय?

राना—मंत्री, क्या यह खबर छिपी रह सकती है?

मंत्री—जी हाँ, छिपी तो नहीं रह सकती। लेकिन पहले छिपाई जा सकती है। काम समाप्त हो जाने पर फिर उतनी चिंता नहीं है। कारण, जिस विधाता ने शोक को इतनी उग्रता दी है, उसी विधाता ने उसे क्षणस्थायी भी बनाया है। शोक धीरे-धीरे आप मिट जाता है।

राना—(सोचकर) मेरा ही मर जाना अच्छा है। मगर उसी से क्या होगा? केवल आत्महत्या का पातक होगा। ख़ासकर अपने परिवार और देश को विपत्ति में छोड़कर मरना भी कायरपन है। ना-ना, कृष्णा के जीते रहते यह झगड़ा मिटते नहीं

देख पड़ता; और यह झगड़ा मिटे बिना सर्वनाश होना भी अव-श्यंभावी है। ओः! ना-ना (उठकर) लेकिन मैं क्या इस कार्य में सहमत हो सकता हूँ? कैसे हो सकता हूँ? मंत्री, ऐसा कर्म तो चांडाल भी नहीं कर सकता। चांडाल तो फिर भी मनुष्य है, पशु-पक्षी भी अपने बच्चे को नहीं मारते। देखो, मांसाहारी जीव भी अपने बच्चों को प्राण-पण से पालते हैं।

मंत्री—महाराज, यह तर्क-वितर्क का विषय नहीं है। (बलेंद्र-सिंह से) आप क्या कहते हैं बाबा?

बलेंद्र०—मैं और क्या कहूँगा? जो कहना था, कह चुका

राना—बलेंद्र, भाई, मैं किस तरह अपनी प्राणों से प्यारी पुत्री के वध को स्वीकार कर सकता हूँ? जिसने यह निष्ठुर पत्र लिखा है, वह शायद संतान के स्नेह से बिलकुल परिचित नहीं है; संतान के ऊपर मा-बाप का स्नेह कितना और कैसा होता है, इस बात का अनुभव उसे बिलकुल नहीं है। भाई, इस बात का ख्याल आते ही हृदय जैसे फटने लगता है। क्या करूँ? आह! (छाती पर हाथ रखकर) हाय विधाता, मेरे भाग्य में क्या तुमने यही लिखा था? ओह! ऐसी भोली-भाली बालिका की हत्या! मैं अपनी प्राण-प्रतिमा कन्या को बिना किसी अपराध के मरवा डालूँ! बेटी कृष्णा! आह!—(मूर्च्छा)

मंत्री—कैसा सर्वनाश!

बलेंद्र०—यह क्या हुआ?—अरे कोई है?

(भृत्य का प्रवेश)

भृत्य—यह क्या हुआ? महाराज की यह क्या दशा देख पड़ती है!

मंत्री—वीरवर, घोर विपत्ति उपस्थित देख पड़ती है। आइए, हम लोग महाराज को यहाँ से ले चलें। (भृत्य से) रामसिंह, तुम जाओ, राज-वैद्य को बहुत शीघ्र राज-भवन में ले आओ।

भृत्य—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

मंत्री—(बलेंद्रसिंह से) महाराज को उठाइए।

(दोनों राना को उठाकर ले जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर। एकलिंग महादेव के मन्दिर के सामने

(भृत्य का प्रवेश)

भृत्य—(स्वगत) ओः! कैसा अंधकार है! आकाश में एक भी तारा नहीं देख पड़ता। (चारों ओर देखकर) कैसा भयानक स्थान है! यहाँ न-जाने कितने भूत, कितने प्रेत, कितने पिशाच रहते हैं। कुछ समझ में नहीं आता कि ऐसे कुसमय में ऐसी जगह महाराज क्यों आए हैं। (चौंककर) ओ बाबा! वह क्या है? कुशल हुई, वह एक सियार है। मेरे तो पैरों के नीचे से धरती निकल गई थी। मैंने सुना है, सियार एक ऐसा पशु है, जो भूतों को प्रिय होता है। ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है। सियारों का यह मधुर स्वर भूतों के सिवा और किसे अच्छा लगेगा? जान पड़ता है, ये सियार दल बाँधकर अपने स्वामी भूतों की ही स्तुति किया करते हैं। दुर! दुर! भाग गया।

(टहलता है) कैसा आश्चर्य है ! आज कई दिन से महाराज का हाल बहुत खराब हो रहा है । खाना-पीना सोना, और राज-काज सब छोड़ दिया है । हर घड़ी यही कहा करते हैं—"हाय विधाता ! मेरे भाग्य में क्या यही था ? हाय बेटी कृष्णा ! जो तेरा रक्षक था उसे ही तेरा भक्षक बनना पड़ा !" (नेपथ्य में पैरों की आहट सुनकर चौंककर) अब यह कौन आया ? यह तो ताड़ के पेड़ से भी लंबा देख पड़ता है ! अरे बापरे ! ग़ज़ब हो गया ! यह नंदी है, या भृंगी, अथवा साक्षात् वीरभद्र ? शायद वीरभद्र ही होगा। वीरभद्र के सिवा और कौन इतना लंबा हो सकता है ? आः ! बापरे ! यह तो इधर ही आ रहा है ! (रक्षक का प्रवेश)

भृत्य—कौन ? रघुवरसिंह ? आह, जान बची। मैं तो भाई तुम्हें वीरभद्र समझकर भाग खड़ा होने को था। मगर भाई तुम भी वीरभद्र से कुछ कम नहीं हो।

रक्षक—चुप-चुप। चिल्लाकर बातचीत मत करो।

भृत्य—क्यों—क्यों ? क्या हुआ ?

रक्षक—महाराज की हालत बहुत ख़राब हो रही है। उनके बचने में भी संदेह है।

भृत्य—सच ? महाराज को क्या हुआ ?

रक्षक—रह-रहकर मूर्च्छा आती है। महात्मा सत्यानंदजी और उनके प्रधान-प्रधान शिष्य अनेक दवाएँ दे रहे हैं, लेकिन कुछ भी फ़ायदा नहीं होता। ओह ! महाराज का दुःख देखकर छाती फटने लगती है। राजा साहब के भाई बलेंद्रसिंह भी बहुत उदास देख पड़ते हैं। दोनों भाइयों में परस्पर ऐसा स्नेह है, जैसा राम और लक्ष्मण में था।

भृत्य—इसमें क्या संदेह है।

रक्षक—अजी तुम तो सदा महाराज के पास ही रहते हो। तुम जानते हो, महाराज की इस दशा का कारण क्या है?

भृत्य—मुझे तो कुछ नहीं मालूम। तुम भी तो सेनापतिजी के पास सदा रहते हो। तुम क्या इस बारे में कुछ नहीं जानते?

रक्षक—बड़े घरों का हाल कौन जाने भाई। अनुमान से मुझे यह जान पड़ता है कि राजकुमारी कृष्णा के विवाह की बातचीत ही इस विपत्ति का मूल कारण है। इधर कई दिन से सेनापति और मंत्री के मुँह से सदा राजकुमारी कृष्णा का ही नाम सुन पड़ता है।

भृत्य—भाई, महाराज के मुँह से भी हर घड़ी कृष्णा का ही नाम सुन पड़ता है।

(बलेंद्रसिंह का प्रवेश)

बलेंद्र०—(स्वगत) कैसा सर्वनाश! यह क्या मेरे करने का काम है? गजराज अवश्य कमल-कुसुम को पैरों से रौंद डालता है, लेकिन वह बुद्धिहीन पशु ही तो है। उसे फूल के रूप-लावण्य-गंध आदि गुणों का ज्ञान नहीं है। लेकिन मनुष्य क्या कभी पशु का काम कर सकता है? ना, ना, यह मुझसे नहीं हो सकता। यह मेरा काम ही नहीं है। मैं यहाँ ठहरूँगा ही नहीं! मुझे यहाँ से चल ही देना चाहिए। (प्रकट) रघुवरसिंह!

रक्षक—क्या आज्ञा है वीरवर?

बलेंद्र०—जल्द मेरा घोड़ा ले आओ।

रक्षक—जो आज्ञा। (भृत्य से) अजी बड़ा अँधेरा है, आओ भाई—हम दोनों जने चलें।

भृत्य—चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

(मन्त्री का प्रवेश)

मंत्री—(बलेंद्रसिंह का हाथ पकड़कर) राजकुमार, अपने भाई और अपने देश की रक्षा कीजिए। मैं अब आपसे और क्या कहूँ ? आप इस तरह नाराज़ हो जायँगे, तो सर्वनाश हो जायगा। चलिए, आपको महाराज बुला रहे हैं।

बलेंद्र०—(हाथ छुड़ाकर) तुम कहते क्या हो मंत्री ? मैं क्या चांडाल हूँ ? या मनुष्य नहीं हूँ ? यह क्या मेरा काम है ? महाराज मुझे क्यों इस कलंक और पाप के सागर में डुबाना चाहते हैं ? भला मैं किस तरह अपने हृदय को वज्र-सा कठोर बना लूँ ? कृष्णा मुझे प्राणों से प्यारी है, मैंने उसे अपने हाथों से खेलाया है। मैं किस तरह उस निर्दोष बालिका की हत्या कर सकता हूँ ? बहुत-से लोग ऐसे भी हैं, जो इस लोक के सुख के लिये परलोक को नष्ट करते हैं; कारण, उनकी समझ में इसका कुछ निश्चय नहीं कि परलोक में क्या होगा। लेकिन मंत्री, तुम्हीं बताओ, पाप-कर्म का फल क्या इस लोक में भी नहीं भोगना पड़ता ? मैं तुमसे फिर भी कहता हूँ मंत्री, तुम बारंबार मुझसे यह पाप-कर्म करने के लिये अनुरोध मत करो।

मंत्री—(हाथ पकड़कर) राजकुमार, आप मंदिर के भीतर महाराज के पास चलिए। यह स्थान ऐसी बातें करने के योग्य नहीं है। (दोनों का प्रस्थान)

(चार संन्यासियों का प्रवेश)

सब—(मंदिर के सामने प्रणाम करके) बम भोलानाथ !

(सब बैठकर शिव की स्तुति करते हैं)

सब—बम महादेव !

१ सं०—महाराज, आप कह रहे थे कि आज रात को महाराज पर कोई विपत्ति आवेगी—इसका क्या कारण है ? यह भविष्य आपको कैसे मालूम हुआ ?

२ सं०—भैया, तुम हमारे शिष्य हो, इसलिये तुमसे कुछ छिपाना मेरा कर्तव्य नहीं है। आज सायंकाल को ध्यान के समय मैंने देखा, जैसे देवदेव भगवान की आँखों से आँसू बह रहे हैं। उसके कुछ देर बाद राजभवन की ओर देखने से मुझे जान पड़ा, जैसे वहाँ से रक्त का स्रोत निकल रहा है। उसके बाद आकाश की ओर देखने से जान पड़ा, जैसे प्रचंड अग्नि में लक्ष्मीदेवी जल रही हैं और सब देवता हाहाकार कर रहे हैं। इन सब बातों को देखने के बाद ही घोर अंधकार छा गया, और बादल गरजने लगे। भैया, यह सब कुलक्षण हैं। इसमें संदेह नहीं कि कोई विशेष विपत्ति आने वाली है।

१ सं०—तो फिर आप महाराज से यह बातें कह क्यों नहीं देते ?

२ सं०—भैया, यह विधाता का विधान है, अवश्य ही होगा। महाराज से ये बातें कहने से कुछ फल न होगा, केवल उनकी घबराहट और बढ़ जायगी।

३ सं०—भगवन, युद्ध तो उपस्थित है, अब और कौन विपत्ति आवेगी ?

२ सं०—सो तो केवल भगवान् एकलिंग ही जान सकते हैं। मुझे अनुमान से यह जान पड़ता है कि जिसके कारण यह युद्ध

उपस्थित है, उसी का कुछ अनिष्ट हो सकता है। जो होना है वह अवश्य होगा। उसकी चिंता करना व्यर्थ है। अब आओ, हम लोग यहाँ से चलें। आकाश में मेघ छाए हुए हैं, जान पड़ता है, बहुत शीघ्र घोर आँधी के साथ पानी बरसनेवाला है।

सब—बम पशुपतिनाथ! हर-हर-हर! बम-बम-बम!

(सबका प्रस्थान)

(बलेंद्र के साथ मंत्री का फिर प्रवेश)

मंत्री—राजकुमार, पिता के सत्य की रक्षा के लिये रामचंद्र ने राज्य-भोग छोड़कर वन की यात्रा की थी। बड़े भाई का पद पिता के समान होता है। महाराज की आज्ञा को टालना आपके योग्य कार्य नहीं है।

बलेंद्र—अब इन सब बातों की क्या ज़रूरत है? मैं महाराज के चरण छूकर प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब भी क्या तुमको यह संदेह है कि मैं प्रतिज्ञा पूरी नहीं करूँगा?

मंत्री—जी नहीं। अब संदेह कैसे हो सकता है?

बलेंद्र—देखो मंत्री, तुम महाराज को सावधानी के साथ राजभवन में ले जाओ। हाय! यह पाप मुझे ही करना पड़ा! पूर्व-जन्म में अवश्य मैंने कोई घोर पाप किया था, नहीं तो—

(नेपथ्य में—वीरवर, आपका घोड़ा तैयार है।)

बलेंद्र—अब मैं जाता हूँ मंत्री।

(प्रस्थान)

मंत्री—(स्वगत) कोई संभावना नहीं थी कि राजकुमार यह निष्ठुर कर्म करने को राज़ी हो जायँगे। बड़ी मुश्किल से राज़ी हुए हैं। हाय! राजकुमारी कृष्णा की मृत्यु के सिवा देश की रक्षा

का और कोई उपाय नहीं है। हाय! विधाता! यह तुम्हारी कैसी विडंबना है?

(राना का प्रवेश)

राना—मंत्री, बलेंद्र क्या गया? हाय! हाय! विधाता, मेरे भाग्य में तुमने क्या यही लिखा था? बेटी! मैं पापी अब तेरा वह चंद्रमुख नहीं देख पाऊँगा! हाय! छी-छी! मैं कैसा क़साई हूँ, कैसा नराधम हूँ!

मंत्री—महाराज, अब चलिए—राजभवन में चलकर आराम कीजिए।

राना—मंत्री, मैं उस मसान में कैसे पैर रक्खूँगा।

मंत्री—धर्मावतार!

राना—मंत्री, अब मुझे धर्मावतार मत कहो। मैं चांडाल से भी अधम हूँ! मैं साक्षात् कलियुग का अवतार हूँ।

मंत्री—महाराज, इसमें आपका क्या दोष? यह सब उसी विधाता की इच्छा से हुआ है, जिसकी इच्छा के विना एक पत्ता तक नहीं हिलता।

(आंधी आती है, और आकाश में बादल गरजते हैं)

राना—(आकाश की ओर देखकर) रात्रिदेवी शायद इस नराधम का यह कुकर्म देखकर कुपित हो रही हैं। इसी से चंद्र-नक्षत्र आदि मणिमय आभूषण अंगों से उतारकर रात्रि ने चामुंडा का रूप धारण किया है। ओः! कैसा भयानक कालरूप अंधकार है! हे अंधकार! तुम क्या मुझे ग्रसने के लिये उद्यत हो? ओः! मेघवाहन इंद्र अंधकार को वारंवार बिजली के कोड़े मारकर जैसे और भी क्रोधित और उत्तेजित कर रहे हैं। कैसा भयंकर बिजली
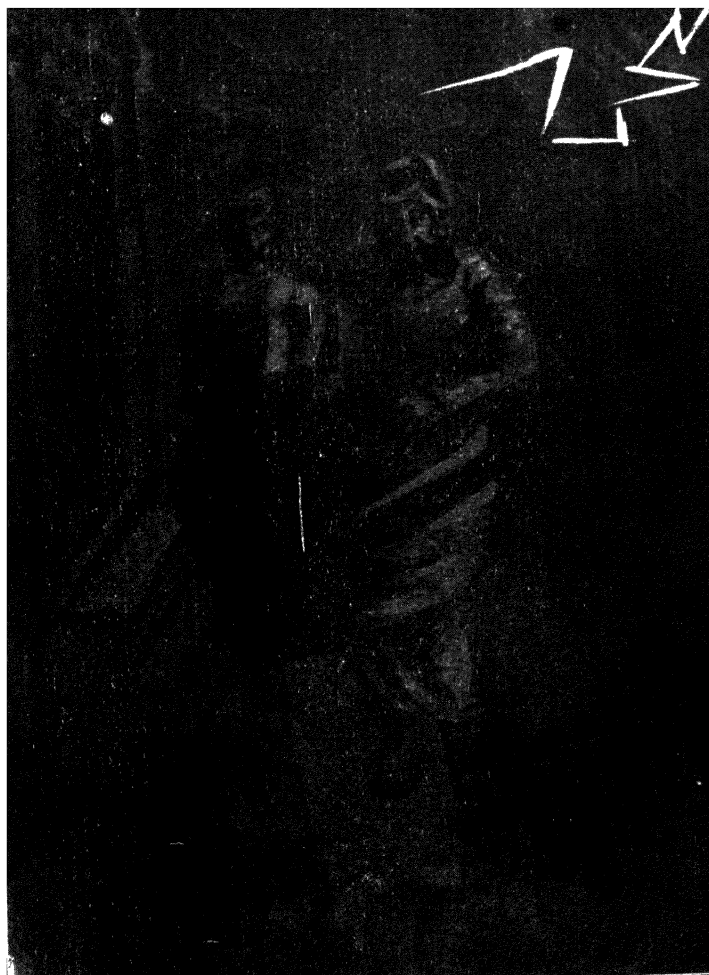
"रात्रि-देवी शायद इस नराधम का यह कुकर्म देखकर
कुपित हो रही हैं!"

(पृष्ठ १२४)

के कड़कने का शब्द है! यह क्या आज प्रलय होनेवाला है? मेरे सिर पर क्यों नहीं वज्र गिर पड़ता? (ऊपर देखकर) हे काल-रात्रि! हे काल! मुझे ग्रस लो। हे वज्र इस पापी को नष्ट कर दे। हे रात्रिदेवी! इस पापी को इस पृथ्वी पर मत रक्खो। नष्ट कर दो। ओः! मेरे ऊपर वज्रपात क्यों नहीं होता? विलंब क्यों है? (सिर पर हाथ रखकर) गिर—वज्र गिर! (चुप रहकर) क्या वज्र भी डरकर भाग गया?

(पागलपन की अवस्था में विकट अट्टहास करना)

मंत्री—(स्वगत) यह कैसी आफ़त आई? क्या महाराज पागल होगए? (प्रकट) महाराज, आप यह क्या कर रहे हैं? आइए—चलिए।

राना—(अनसुने भाव से) परमेश्वर! क्या किया?—मृत्यु न होगी? क्यों न होगी? क्यों? क्यों? एं! क्या होगा? तो फिर क्या होगा? मेरा क्या होगा? (रोते हैं)

मंत्री—(स्वगत) यह कैसा सर्वनाश? अब क्या करूँ? इन्हें कैसे राजभवन तक ले जाऊँ?

राना—यह क्या है! ओ बेटी कृष्णा! क्यों बेटी?—आओ, आओ, एकबार तुम्हें प्यार करके हृदय की ज्वाला शांत करूँ। तुम्हें क्या हुआ बेटी? तुम क्यों रोती हो? आहा—समझ गया, मैं तुम्हारा दुखिया पिता हूँ। मुझे तुम बहुत चाहती हो, इसीसे मेरा दुःख देखकर रो रही हो! (रोते हैं) यह क्या भाई बलेंद्र? यह क्या? यह क्या? क्या करते हो? क्या करते हो? हाँ-हाँ-हाँ, ऐसा काम मत करो! ओः!—

(मूर्छित होकर गिर पड़ना)

मंत्री—(स्वगत) यह क्या ! यह कैसा सर्वनाश ! अब क्या होगा ? यहाँ तो कोई और है भी नहीं। (ऊँचे स्वर से) अरे कोई है ?

(भृत्य और रक्षक का प्रवेश)

भृत्य—यह कैसा सर्वनाश !

रक्षक—महाराज को क्या हुआ ?

मंत्री—महाराज को पकड़कर शीघ्र राजभवन में ले चलो।

(राजा को लेकर सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर। कृष्णकुमारी का महल

(अहल्यादेवी और तपस्विनी का प्रवेश)

अह०—भगवती, कहाँ—मेरी कृष्णा तो यहाँ नहीं है।

तप०—जान पड़ता है, राजनंदिनी अभी संगीतशाला से नहीं आईं। आप इतना अधीर क्यों हो रही हैं ?

(अहल्यादेवी चुपचाप रोती हैं)

तप०—(हाथ पकड़कर) छी-छी ! यह क्या करती हो रानी-जी ? स्वप्न भी क्या कभी सत्य होता है ? अगर देखे हुए स्वप्न सत्य ही होते, तो अब तक इस पृथ्वी पर कितने दरिद्र राजा हो जाते, और कितने ही राजा कंगाल। हज़ारों तरह के स्वप्न लोग देखते हैं; वे कभी सत्य नहीं होते।

अह०—भगवती, कृष्णा को देखे विना एक प्रकार के अमंगल की आशंका से मेरा चित्त चंचल हो रहा है। आप मेरी कृष्णा को बुला दीजिए। मैं जब तक उसे नहीं देखूँगी, तब तक मेरी बेचैनी नहीं मिटेगी।

तप०—रानीजी, आप इतना व्याकुल क्यों होती हैं ? आप अपना अद्भुत स्वप्न तो सुनाइए । आपने क्या स्वप्न देखा है ?

अह०—भगवती, उस स्वप्न की बात याद करने से मेरा हृदय धड़कने लगता है, शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।

तप०—आप कहिए तो, क्या स्वप्न देखा है ?

अह०—मैंने स्वप्न में देखा, जैसे मैं द्वार पर खड़ी हूँ, इसी समय नंगी तलवार हाथ में लिए एक वीर और भयानक पुरुष भीतर घुस आया ।

तप०—उसके बाद ?

अह०—मैंने देखा, मेरी कृष्णा जैसे इस पलंग पर अकेली सोई हुई है । उस वीर पुरुष ने पलंग के पास आकर जैसे तरवार का वार करना चाहा, वैसे ही मैं भय के मारे चिल्ला उठी, और मेरी आँख खुल गई । भगवती, मालूम नहीं, मेरे भाग्य में क्या बदा है ?

(रोती हैं)

तप०—रानीजी, आप क्या जानतीं नहीं कि स्वप्न में बुरा देखने से भला होता है, और भला देखने से बुरा ?

अह०—भगवती, सो चाहे जो हो, मैं अपनी कृष्णा को आज रात को यहाँ अकेले सोने नहीं दूँगी ।

तप०—(मुसका कर) क्यों रानीजी ? उसमें हर्ज ही क्या है ? कृष्णा तो यहीं नित्य अकेली सोती है । (नेपथ्य में बाजे बजते हैं) वह सुनिए, मैं कहती न थी कि कृष्णा संगीतशाला में होगी । चलिए, हम वहीं चलें । और देखिए रानीजी, आप कृष्णा के सामने इस तरह व्याकुल न होइएगा । कृष्णा अगर आपको

व्याकुल देखेगी, तो बहुत बेचैन हो जायगी। उसे वृथा व्यथित करना किसी तरह उचित नहीं। सोचिए तो सही, स्वप्न भी कोई चीज़ है? वह तो एक प्रकार का इंद्रजाल-मात्र है! चलिए, चलें।

(दोनों का प्रस्थान)

(तलवार हाथ में लिए हुए बलेंद्रसिंह का प्रवेश)

बलेंद्र०—(स्वगत) मैं सैकड़ों बार इस महल में आया हूँ। लेकिन आज भीतर जाने का जैसे साहस नहीं होता—पैर आगे नहीं पड़ता। ऐसा होना कुछ आश्चर्य नहीं, बल्कि स्वाभाविक ही है! चोर की तरह सेंध काटकर पराए घर में घुसना क्या वीर पुरुष का काम है? हाय! महाराज ने मुझे क्यों इस झंझट में डाल दिया? यह दारुण कर्म क्या और किसी के द्वारा नहीं हो सकता था? जी चाहता है, कृष्णा को न मारकर ख़ुद जान दे दूँ। (लंबी साँस छोड़कर) लेकिन उससे तो कुछ फल न होगा। (पलंग के पास जाकर) कहाँ? यहाँ तो कृष्णा नहीं है! जान पड़ता है, अभी तक सोने नहीं आई। अब क्या करूँ? (टहलकर) कृष्णा शायद रानी के पास होगी।

(नेपथ्य में गीत पुन पड़ता है)

शरद ऋतु पूरनचंद अकास!
चटकीली चाँदनी चहूँ दिसि कीन्हों बिमल बिकास;
मानो सुरसुंदरीगनन को सोहत हास-विलास।
डोलत मंद समीर सुसीतल, फैली सुमन-सुबास;
प्रकृति प्रसन्न, सांति जग छाई, नाहिं ताप को त्रास।

बलेंद्र०—(स्वगत) हाय! निष्ठुर विधाता! क्या तुम्हें मेरे ही हाथों से इस कलकंठी कोकिला को सदा के लिये चुप कराना

पसंद है ? आह ! मैं किस तरह इस निरपराध, भोली बालिका की हत्या का महापाप करूँगा ? मेरे इस पाप का तो कोई प्रायश्चित्त ही नहीं हो सकता !—लो, वह कृष्णा आ रही है। हाय ! हे विधाता ! तुम क्यों इस राज-वंश के प्रतिकूल हो ? ऐसी लक्ष्मी-रूपिणी बालिका—ऐसी अमूल्य रत्न—देकर क्या उसे छीन लोगे ? हाय ! बेटी ! तू क्यों मुझ पापी के हाथ से प्राण गँवाने आ रही है ?—मेरे हाथ-पैर काँप रहे हैं, तलवार हाथ से गिरी पड़ती है। मैं किस तरह अपने हृदय को पत्थर का बना लूँ ? उधर प्रतिज्ञा कर आया हूँ ! मैं तो बड़े धर्म-संकट में पड़ा हूँ ! क्या करूँ ?

(आड़ में हो जाता है)

(तपस्विनी के साथ कृष्णकुमारी का प्रवेश)

तप०—बेटी, इतनी रात तक गाने-बजाने में लगे रहना ठीक नहीं। जाओ, तुम भी जाकर सो रहो, देर न करो। रानीजी भी शयन-मंदिर में सोने गई हैं।

कृष्ण०—अच्छा भगवती, माताजी इतना व्याकुल क्यों देख पड़ती हैं ? वह आज मुझे इस घर में सोने को मना क्यों कर रही थीं ?

तप०—राजकुमारी, एक तो माता के हृदय में यों ही संतान स्नेह अधिक होता है, दूसरे तुम उनकी एकमात्र संतान हो। उस पर तुम्हारे ब्याह को लेकर इस समय जैसा झंझट उठ खड़ा हुआ है, उसे देखकर उनका व्याकुल होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कृष्ण०—(हँसकर) तो क्या माताजी यह सोचती हैं कि मुझे कोई इस महल से चुरा ले जायगा ?

तप०—बेटी, यह भी कहीं हो सकता है ? चंद्रलोक से अमृत को उठा ले जाना क्या हरएक का काम है ?

कृष्ण०—(खिड़की खोलकर) ओः ! भगवती ! देखिए, एकदम कैसी अँधियारी छा गई ! चंद्रमा अस्त हो गया । चंद्रमा के विरह से रात्रि जैसे दुःखसागर में डूब रही है !

तप०—(हँसकर) बेटी, तुमने यह कविता करना कब सीखा ? जाओ, सो रहो । मैं अब कुटी को जाती हूँ । आधी रात हो गई है ।

कृष्ण०—जो आज्ञा ।

तप०—अब मैं जाती हूँ ।

(प्रस्थान)

कृष्ण०—(स्वगत) राजा मानसिंह एक बार युद्ध में हार अवश्य गए हैं, लेकिन सुना है, वह फिर सैन्य-सामंत लेकर जयपुर के राजा पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। देखें, विधाता क्या करते हैं ? मालूम नहीं, मेरे भाग्य में क्या बदा है ? हा ! (लंबी साँस छोड़कर) सुभद्रा के लिये वीर अर्जुन ने जैसे यादवों के साथ घोर युद्ध किया था, यह घटना भी वैसी ही देख पड़ती है । (खिड़की में से झाँककर) ओह ! कैसी भयानक बिजली चमक रही है ! जैसे प्रयलकाल की आग पापियों की खोज में पृथ्वी पर घूम रही है । मेघ का गरजना सुनकर तो बड़े-बड़े वीर पुरुषों का भी कलेजा काँप उठता होगा । ओः ! कैसी भयंकर आँधी चल रही है ! आज क्या प्रलय होनेवाला है ? यह महल पर्वत की तरह दृढ़ और अटल है । प्रबल आँधी चलने पर भी इसमें कुछ भय नहीं है । लेकिन जो लोग छोटे-छोटे कच्चे घरों में रहते हैं, उन्हें न-मालूम आज कितना कष्ट हो रहा होगा । आहा ! परमेश्वर

उनकी रक्षा करें। हे विधाता! सब मनुष्यों का वही आकार है वही बुद्धि है, लेकिन कोई बड़े-बड़े महलों में रहकर इंद्र के समान अतुल ऐश्वर्य भोगता है, और कोई आश्रय-हीन होकर पेड़ के तले बड़े कष्ट से समय बिताता है। संसार की कैसी विचित्र गति है लेकिन महलों में रहनेवालों को ही सुखी कैसे कहा जाय? महलों में रहने से कोई सुखी नहीं होता। मेरे तो किसी बात की कमी नहीं है। फिर मैं सुखी क्यों नहीं हूँ? सच तो यह है कि मन का सुख ही सच्चा सुख है। (लंबी साँस लेकर) अच्छा, मेरा मन आज क्यों इतना चंचल हो रहा है? पृथ्वी की कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती। मेरा मन जैसे पिंजड़े में बंद चिड़िया की तरह व्याकुल हो रहा है। देखूँ, अगर सोकर कुछ सुस्थ हो सकूँ। अच्छा सोकर देखूँ। हे महादेव! इस दासी पर दया करके यह चित्त की चंचलता दूर करो। प्रभो! यह दासी तुम्हारे ही शरणागत है।

(सोती है

(बलेंद्रसिंह का फिर प्रवेश)

बलेंद्र०—(स्वगत) हाय! मैं ऐसा कर्म करने आया हूँ कि कहीं एकदम रसातल में प्रवेश न कर जाऊँ, इस भय से पृथ्वी पर पैर रखते भी खटका लगता है। ऐसा जान पड़ता है कि पग-पग पर पृथ्वी मुझे ग्रस लेना चाहती है। अगर ऐसा ही हो जाय, तो मैं बहुत अच्छा। हे रात्रिदेवी, तुम साक्षी हो, मैं यह अन्याय कर्म अपनी इच्छा से नहीं करता। हाय! मैं क्या सचमुच इस राज कुल-मृणाल से इस प्रफुल्ल कनक-पद्म को छिन्न-भिन्न कर डालूँगा ऐसे सुवर्ण-मंदिर में सेंध देकर इस बालिका के जीवन-धन का हरने की अपेक्षा और बड़ा पाप क्या होगा? (सोचकर) मगर क्या

करूँ ? बड़े भाई की आज्ञा को न मानना या उसकी अवहेला करना भी महापाप है। (लंबी साँस लेकर) देखता हूँ, मेरी दशा मारीच राक्षस की-जैसी हो रही है—किसी ओर रक्षा नहीं है। एक बार जन्म भर के लिये कृष्णा का चंद्रमुख देख लूँ। (कृष्णा का मुख देखकर) हाय ! मैं राहु होकर इस पूर्ण चंद्रमा को ग्रसने आया हूँ। मैं सदा के लिये इस प्रकाश को बुझाने आया हूँ ! (आँसू पोंछकर) बेटी ! मैं निष्ठुर चांडाल हूँ ! मैं बिना अपराध के तेरे प्राण लेने आया हूँ ! आहा—बेटी बिलकुल बेखटके निद्रादेवी की शांतिमय गोद में विश्राम कर रही है। मुख का भाव देखने से जान पड़ता है, यह बड़े सुख से मनोहर स्वप्न देख रही है। लेकिन यह नहीं जानती कि पास ही कालरूप धारण किए पापी चाचा प्राण लेने के लिये खड़ा है। हाय ! मैं जिसे प्राण से बढ़कर प्यार करता हूँ, जिसके स्नेह की शक्ति से मुझ ऐसे युद्ध-व्यवसायी पुरुष का कठिन हृदय भी इस समय रो रहा है, उसे मैं किस तरह मारूँ ? वीर क्षत्रिय के शस्त्र को अंत में यह कुत्सित काम करना पड़ेगा ? धिक्कार ! धिक्कार !—(कुछ देर ठहरकर) मगर मैं भाई की आज्ञा से विवश हूँ ! अब काम पूरा कर डालना ही अच्छा।—(आगे बढ़कर) ओः ! इस स्नेह के बंधन को तोड़ना क्या मनुष्य का काम है ? द्रौपदी के वस्त्र की तरह इस बंधन का अंत ही नहीं मिलता।—हे पृथ्वी, तुम साक्षी हो—हे रजनीदेवी, तुम साक्षी हो ! (मारने के लिये हाथ उठाता है)

कृष्णा०—(सहसा उठकर) ऐं-ऐं—कौन ? चाचा !—यह क्या ? यह क्या ?

(बलेंद्रसिंह तलवार पृथ्वी पर फेक देते हैं)

"बेटी, मैं तुम्हारा चाचा नहीं, चांडाल हूँ!"

(पृष्ठ १३३)

कृष्णा०—एँ—चाचा ! यह क्या ? आप यहाँ इस तरह कैसे आए ?

बलेंद्र०—नहीं—सो—हाँ कुछ नहीं; केवल तुमको एक बार देखने आया था बेटी। बेटी—बेटी, मुझे बिदा कर। मैं जाता हूँ।

कृष्णा०—चाचाजी, आप एक महावीर पुरुष हैं। आपको क्या इस तरह छल करना चाहिए ?

(बलेंद्र मुँह ढककर चुपचाप रोते हैं)

कृष्णा०—(तलवार पड़ी हुई देखकर) यह क्या है ? (तलवार उठाकर छाती में कपड़ों के बीच छिपा लेती है) चाचाजी मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, यह मामला क्या है, सब हाल ख़ुलासा करके कहिए।

बलेंद्र०—बेटी, तुम इस नराधम निष्ठुर को अब चाचा मत कहो। मैं तुम्हारा चाचा नहीं, चांडाल हूँ। मैं तुम्हारा काल होकर आया था।

(रोते हैं)

कृष्णा०—यह क्या कहते हैं आप चाचाजी ? मेरे काल होकर आए थे ?

बलेंद्र०—हा मेरी कुल-लक्ष्मी !—हे पृथ्वी, तू फट जा, और मुझे जगह दे !

(रोते हैं)

कृष्णा०—(हाथ पकड़कर) क्यों चाचाजी ? आप इतने व्याकुल क्यों होते हैं ?

बलेंद्र०—कृष्णा, मैं तुम्हारे प्राण लेने आया था !

कृष्णा०—क्यों चाचाजी ? मैंने आपका क्या अपराध किया है ?

बलेंद्र०—बेटी, तुम तो साक्षात् लक्ष्मी हो। तुम अपराध करना क्या जानो? बात यह है कि मारवाड़ के राजा मानसिंह और जयपुर के राजा जगतसिंह, दोनों ने प्रतिज्ञा की है कि या तो तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे, और नहीं तो उदयपुर-राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर डालेंगे। हम लोग कैसे संकट में पड़े हैं, सो तुम अच्छी तरह समझ सकती हो। इसी कारण—

कृष्ण०—चाचाजी, क्या मेरे पिताजी की भी यही इच्छा है कि—

बलेंद्र०—बेटी, मैं क्या कहूँ? उनकी अनुमति के बिना क्या कभी मैं यह चांडाल का काम करने के लिये तैयार हो सकता था?

कृष्ण०—तो फिर इस साधारण बात के लिये आप इतने कातर क्यों हो रहे हैं? आप पिताजी को तनिक यहाँ बुला लीजिए, मैं उनके चरणों में प्रणाम करके जन्म-भर के लिये बिदा हो जाऊँ।—चाचाजी, आप क्यों इतना सोच कर रहे हैं? मैं राजपुत्री—राज-कुल-पति राना भीमसिंह की बेटी हूँ। आप वीर केसरी हैं—मैं आप ही की तो भतीजी हूँ! मैं क्या मृत्यु को डरती हूँ? (आकाश में कोमल वाद्य-ध्वनि होती है) वह सुनिए चाचाजी!—देखिए, आकाश की ओर देखिए! आहा—कैसा सुंदर रूप-लावण्य है! यही हमारे कुल की सती पद्मिनीदेवी हैं। यह मुझे पहले एक बार और दर्शन दे चुकी हैं।—जननी, तुम्हारी दासी अभी आती है।—देखो चाचाजी, इस घर में सहसा नंदन-कानन की पद्म-गंध भर गई। आहा! मेरा कैसा सौभाग्य है!

(नेपथ्य में पैरों की आहट सुन पड़ती है)

बलेंद्र०—यह क्या—यह क्या?

(राना और उनके पीछे मंत्री का प्रवेश)

राना—(पागल की तरह इधर-उधर देखकर) कहाँ है—कहाँ ?

मंत्री—(कृष्णा को देखकर स्वगत) तो अभी तक नहीं हुआ। खैर अच्छा हुआ। (आगे बढ़कर बलेंद्रसिंह से कान में) राजकुमार, आप देखते क्या हैं ? सर्वनाश उपस्थित है ! महाराज एकाएक पागल-से हो गए हैं।

बलेंद्र०—यह तो एकदम सर्वनाश ही हो गया ! (राना पृथ्वी पर बैठ जाते हैं) हाय-हाय ! यह क्या हुआ ?—मंत्री जी, तुम महाराज को यहाँ क्यों ले आए ?

मंत्री—मैं क्या करूँ राजकुमार ? वह आप इधर ही चले आए, लाचार मुझे भी उनके साथ आना पड़ा। मैंने सोचा, अकेले छोड़ देना ठीक नहीं; न-जाने क्या करें, कहाँ चले जायँ। इसके सिवा यह भी सोचा कि महाराज की जब यह दशा हो गई है, तब ऐसे घोर पाप-कर्म की ज़रूरत क्या है। इसी से आपको मना करने चला आया। हा ! राजकुमारी ! कौन जानता था, ऐसा अनर्थ हो जायगा ?

राना—(पागलपन के भाव से) बलेंद्र ! छी भाई ! ऐसा काम भी कोई करता है ? (उठकर) क्या करते हो, क्या करते हो ? ना, ना, ना, ना, मानसिंह—मानसिंह ! हूँ ! इतनी मजाल ! उसे तो मैं अभी नष्ट कर दूँगा। जाता हूँ। (कुछ दूर जाकर) यह लो, मेरी बेटी कृष्णा तो यहीं खड़ी है। क्यों बेटी ! क्यों ? एक बार अपनी वीणा बजाओ, एक गीत गाओ। आहाहा ! वह—वह ! हाय, मेरे कुल की लक्ष्मी ! तुम कहाँ गई ? (रोते हैं)

कृष्ण०—(राजा को शोक से अभिभूत जानकर) चाचाजी ! पिता-

जी यों क्यों बक रहे हैं ?—पिताजी ! आप इस साधारण बात के लिये इतना शोक क्यों कर रहे हैं ? सभी जीवों को एक दिन मरना है, फिर उसके लिये शोक क्या करना है ? जीवन कभी चिरस्थायी नहीं है। कोई आज मरा तो कोई कल मरेगा। अमर कोई नहीं है। कुल के मान की रक्षा के लिये प्राण देने से बढ़कर पुण्य-कार्य और क्या हो सकता है ? (आकाश में कोमल वाद्य-ध्वनि) वह सुनिए, महारानी प्रातःस्मरणीया पद्मिनी मुझे बुला रही हैं। उन्होंने इससे पहले स्वप्न में दर्शन देकर मुझसे कहा था कि "जो युवती कुल के मान की रक्षा के लिये अपने प्राण देती है, स्वर्ग-लोक में उसको आदर और सुख मिलता है।" पिताजी ! आप इस दासी को सदा के लिये बिदा कीजिए।—केवल दुःख यही है कि मरने के समय माताजी के चरणों के दर्शन नहीं पा सकी।

(रोती है)

बलेंद्र०—कृष्णा कृष्णा ! यह क्या करती हो ? छी-छी ! ऐसी बातें ज़बान पर न लाओ। तुम्हारे शत्रु की मृत्यु हो।

कृष्णा०—चाचाजी ! ऐसा कोई जीव नहीं है, जिसे विधाता ने मृत्यु का ग्रास न बनाया हो। लेकिन मृत्यु सबके लिये यश देने-वाली नहीं होती। अनेक वृक्षों को लोग काटकर जला देते हैं, उनमें ऐसा ही भाग्यशाली कोई वृक्ष होता है, जिसकी लकड़ी से देव-प्रतिमा बनाई जाती है। कुल के मान की रक्षा के लिये, या पराए उपकार के लिये जो मरता है, वही चिरस्मरणीय होता है।

बलेंद्र०—बेटो, तुम ऐसी बातें न करो। तुम हम लोगों के जीवन का सर्वस्व और आँखों की ज्योति हो। राज्य या राज-पद क्या तुमसे बढ़कर प्यारा है ?

कृष्ण०—चाचाजी, आप इस ख़याल को मन में न लाइए। आप बचपन से मुझ पर स्नेह रखते हैं—मुझे प्राणों से बढ़कर चाहते हैं। इस समय मेरे सब अपराध क्षमा करके मुझे आज्ञा दीजिए। आशीर्वाद दीजिए कि मैं अपने कुल के मान की रक्षा कर सकूँ।—पिताजी! आप नरपति हैं। हज़ारों प्राणियों का पालन करने के लिये आप राजा के पद पर बैठे हैं। उनका सुख-दुःख भूलकर एक तुच्छ बालिका के प्राणों की ममता में पड़कर कर्तव्य की अवहेला करना आपके योग्य काम नहीं है। आप इस दासी को सदा के लिये बिदा कीजिए। आप चुप क्यों हैं? मैंने क्या अपराध किया है, जो आप मुझसे बोलते नहीं? पिताजी! अपनी दुलारी बेटी को आशीर्वाद दीजिए कि वह इस भव-यंत्रणा से छुटकारा पाकर स्वर्ग में जननी पद्मिनी के चरणों में स्थान पा सके।

(राना के पैरों में गिर पड़ती है)

राना—यह मानसिंह का दूत है? इतना साहस! मुझे क़ैद करना चाहता है?

कृष्ण०—(उठकर) क्यों पिताजी, मैंने आपका क्या अपराध किया है?

राना—क्या अपराध किया है? मुझसे छल करता है? दूर हो—दूर हो!

मंत्री—कैसा सर्वनाश है! महाराज एकदम पागल हो गए!

कृष्ण०—हाय विधाता! क्या मेरे भाग्य में यही लिखा था? इस समय क्या पिताजी भी विमुख हो गए? मैंने पिता का ऐसा क्या अपराध किया है, जो वह भी मुझसे विमुख हो गए?

बलेंद्र०—भगवती ! यह सब हमारे दुर्भाग्य की बात है। महाराज एकाएक चिंता और शोक के मारे इस दशा को पहुँची गए हैं। (अहल्यादेवी का प्रवेश)

अह०—कहाँ, कहाँ, मेरी प्यारी बेटी कृष्णा कहाँ है ? (कृष्णा को देखकर) यह क्या ? मेरी कृष्णा इस तरह क्यों पड़ी है ?—(पास जाकर) ऐं ? यह रक्त कैसा ?—हाय ! महाराज ! यह हत्या किसने की ?

तप०—रानीजी ! आप महाराज से क्या पूछती हैं ? वह क्या अब अपने आपे में हैं ?

अह०—तो जान पड़ता है, उन्होंने ही यह हत्या की है। हाय रे ! मेरा तो सर्वनाश हो गया ! हाय ! बेटी जड़ से उखड़ी हुई स्वर्णलता के समान मुरझाई पड़ी है ! ओ बेटी कृष्णा ! मैं तेरी अभागिन माता तुझे पुकार रही हूँ—एक बार उसी तरह बोल ! बेटी, क्या तू मुझ पर नाराज़ होकर चली गई ? हाय ! मैं यह मुखचंद्र देखे विना, वह मधुर वाणी सुने विना, कैसे जियूँगी ?

(रोती हैं)

कृष्णा०—(धीमे स्वर से) माताजी, आ गईं ? मुझे अपने चरणों की रज दो। माताजी, पिताजी मुझ पर बहुत नाराज़ हैं। तुम उनसे मेरे सब दोष क्षमा करने की प्रार्थना करो। माताजी, मैंने आपके भी अनेक अपराध किए हैं। इस समय अपनी अभागिन बेटी के सब अपराध क्षमा करके आशीर्वाद दो। माताजी ! अपनी दुखिया बेटी को कभी-कभी याद करना।

(मृत्यु—आकाश में कोमल वाद्य-ध्वनि)

अह०—बेटी, मैंने तेरा क्या अपराध किया था, जो मुझे छोड़कर चली गई ? (रोकर) हाय-हाय ! बेटी, तू चुप क्यों हो गई ? फिर एक बार 'मा' कहकर पुकार। बेटी ! कृष्णा ! कृष्णा ! हाय कृष्णा ! मेरी कृष्णा !   (मूर्च्छा)

तप०—रानी भी एकाएक बेहोश हो गई ! हे ईश्वर, यह क्या किया ? रानी, ओ रानी ! उठो। हाय-हाय ! एकदम बसा-बसाया घर उजड़ गया !

अह०—(होश में आकर) भगवती ! मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ ?—महाराज ! यह काम किसने किया ?—बलेंद्र ! तुम्हीं बताओ (उठकर) तुम सब चुप हो ? कोई नहीं बतावेगा ?

राना—आ: ! (आगे बढ़कर) रानी (हाथ पकड़कर) तुमने मेरी कृष्णा को देखा है ? कहाँ गई ?

अह०—महाराज ! तुम इस हाथ से मुझे मत छुओ ! तुम्हारे हाथ में मेरी कृष्णा का खून लगा हुआ है। महाराज ! मैं जन्म-भर के लिये जाती हूँ।

(हाथ छुड़ाकर वेग से प्रस्थान)

मंत्री—भगवती ! आप ही कष्ट कीजिए। महारानी कहाँ गईं—ज़रा जाकर देखिए।

(तपस्विनी का प्रस्थान)

राना—रानी ! कहाँ जाती हो ?—कहाँ जाती हो ?—गईं ? गईं ? गईं ? तुम भी गईं ? (रोते हैं) हा कृष्णा ! हा कृष्णा हा कृष्णा ! मैं भी आता हूँ बेटी—मैं भी आता हूँ।—भाई! बलेंद्र !—कृष्णा कहाँ गई ? कृष्णा ! मेरी कृष्णा ! बेटी कृष्णा !

(रोते हैं)
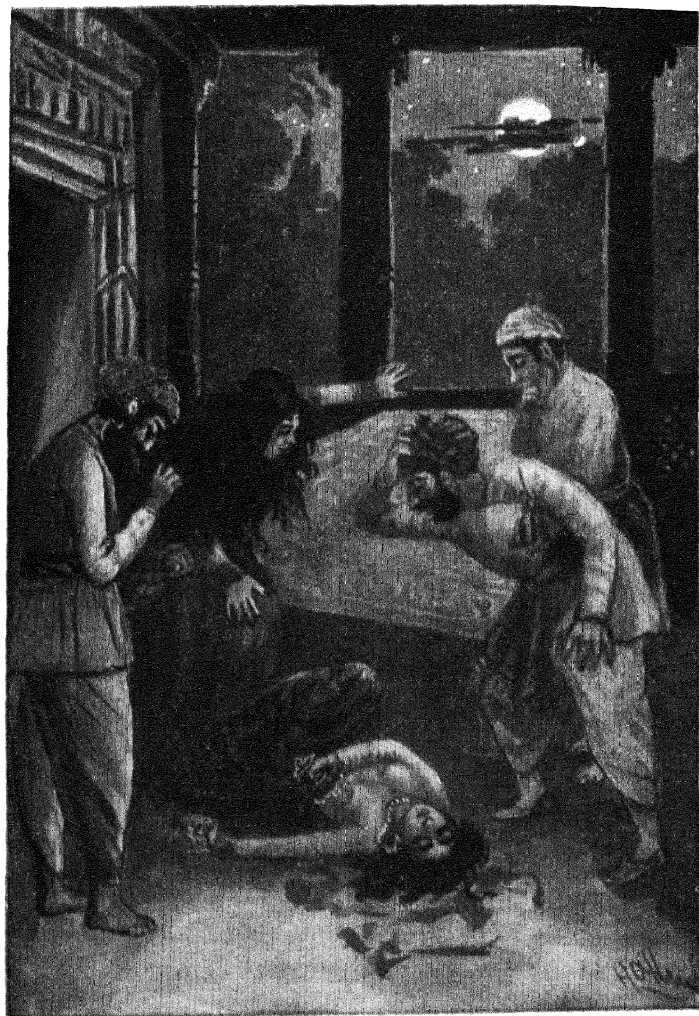
यह देखा, हमारी कुल-लक्ष्मी महानिद्रा में अचेत पड़ी है।

(पृष्ठ १४१)

मंत्री—हाय-हाय ! मुझे अपनी आँखों से स्वामी की और उनके परिवार की यह दशा देखनी पड़ी ! (रोते हैं)

(अंतःपुर में रोने की ध्वनि सुन पड़ती है)

(तपस्विनी का प्रवेश)

तप०—हाय-हाय ! यह कैसा अनर्थ हुआ !—राजकुमार ! रानी ने भी आत्महत्या कर ली !—हाय-हाय ! ऐसा सर्वनाश होते मैंने कभी नहीं देखा। यह कैसी विधाता की विडंबना है ! हाय-हाय !

बलेंद्र०—मंत्री, अब क्या बाक़ी है ? सब समाप्त हो गया ! (रोते हैं) हाय ! हाय ! मृत्यु क्या मुझको भूल गई है ?—दादा ! यह देखो, हमारी कुल-लक्ष्मी महानिद्रा में अचेत पड़ी हैं। अब इस राज्य को लेकर हम क्या करेंगे ? हाय—हाय !—

राना—बलेंद्र ! भाई ! कृष्णा ! कृष्णा ! मेरी कृष्णा !

बलेंद्र०—दादा ! तुम ज्ञानशून्य हो रहे हो, यह भी तुम्हारा सौभाग्य है ! कारण, तुम्हें इस घोर दुःख का कुछ भी अनुभव नहीं होता होगा।—हे ईश्वर मुझे भी पागल कर दो, या मौत ही दो। (रोते हैं)

मंत्री—राजकुमार ! अब शोक करना वृथा है। महाराज को यहाँ से ले जाइए। और आइए, इस विषय में जो कर्तव्य हो, सो किया जाय। इधर तो सब समाप्त हो गया।—हाय ! विधाता ! तुम्हारी कैसी अद्भुत लीला है ! मनुष्य कुछ सोचता है, और तुम कुछ करते हो।—युवराज आइए, अब देर न कीजिए।

(पर्दा गिरता है)

हमारा नाटक-साहित्य

अचलायतन—अनुवादक, माधुरी संपादक पं० रूपनारायण पांडेय। रवींद्र बाबू के सुप्रसिद्ध सामाजिक नाटक का यह अनुवाद है। इसमें हिंदू-धर्म की छुआछूत और आडम्बर की कट्टरता का समालोचनात्मक खंडन किया गया है। बड़ा ही सरस वर्णन है। अनुवाद भी मौलिक-सदृश है। मूल्य ॥), सजिल्द १) रु०

बुद्ध-चरित्र— अनुवादक, 'माधुरी'-संपादक प० रूपनारायण पांडेय कविरत्न। पांडेयजी ने बँगला के अनेक विख्यात नाटकों का ऐसा भावपूर्ण अनुवाद किया है कि वे बिलकुल मौलिक-से मालूम होते हैं। समाज भाव, भाषा, शैली सब पर हिंदीपन और स्वाभाविकता की छाप लगी हुई है। राजसी सुख-भोग की लालसाओं को लात मारकर, अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये संसार के सारे सुखों को तिलांजलि देकर, महात्मा बुद्धदेव किस प्रकार आत्मचिंतन और वैराग्य में लीन हुए थे, इसका स्पष्ट चित्र देखना हो, तो यह नाटक अवश्य पढ़िये। ज्ञान, शिक्षा, उपदेश, पवित्रता और शांति तथा प्रेम से पूर्ण ऐसा मनोरंजक नाटक आपने शायद ही अब तक पढ़ा हो। ४-५ चित्र-सहित पुस्तक का मूल्य ॥।), सुंदर रेशमी जिल्द का मूल्य १।)

कर्बला—लेखक हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत प्रेमचन्द बी.ए. मौलिक नाटक। हज़रत मुहम्मद के नवासे हजरत हुसेन की शहादत का करुणा-जनक ऐतिहासिक वृतांत। मुसलिम इतिहास की सबसे हृदय-विदारक, युगांतरकारी और महत्व-पूर्ण घटना। वीर भक्ति और करुणारस का अनुपम दृश्य। पढ़ते वक्त कलेजा हाथों से थाम लेना पड़ता है। इतनी बड़ी ट्रेजेडी कदाचित् समस्त संसार में न हुई होगी। हुसेन का अपने समस्त परिवार को और अपने प्राण को भी इसलाम की मर्यादा

पर बलिदान कर देना, कर्बला के निर्जन और निर्जीव मैदान में प्यास से तड़प-तड़पकर मरना दिल हिला देने वाले दृश्य हैं। इस घटना को इसलामी इतिहास का महाभारत समझना चाहिए। उसी वीरात्मा के शोक में आज तक समस्त इसलामी संसार में दस दिन तक मुहर्रम का मातम होता है। मूल्य १॥); सुनहरी रेशमी जिल्द २)

दुर्गावती—लेखक, लखनऊ युनिवर्सिटी के हिंदी-लेक्चरर पं॰ बद्रीनाथ भट्ट बी॰ए॰। यह गद्य-पद्यमय वीर-रस-पूर्ण ऐतिहासिक मौलिक नाटक बड़ा ही मनोरंजक विनोद-पूर्ण, शिक्षाप्रद और भावमय है। कहीं वीरता के ओजस्वी वर्णन से आपका रोम-रोम फड़क उठेगा, और कहीं साहित्यिक विनोद से आप खिलखिला उठेंगे। पुस्तक बड़ी सजावट से छप रही है। मूल्य लगभग १)

वरमाला—लेखक, श्रीयुतगोविंदवल्लभ पंत। मार्कण्डेय-पुराण के आधार पर लिखा हुआ संयोगांत नाटक। थोड़े पात्रों से थोड़े समय में रंगमंच पर बड़ी आसानी से खेला जा सकता है। इसके गीतों में काव्य और संगीत का मिलन है। कई रंगीन और सादे चित्र भी हैं। मूल्य केवल ॥), रेशमी जिल्द १)

खाँजहाँ—लेखक, पं॰ रूपनारायणजी पांडेय। खाँजहाँ ऐतिहासिक नाटक है। बँगला-भाषा के प्रसिद्ध नाटक-लेखक बाबू क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद के नाटक के आधार पर इसकी रचना हुई है। इसमें दिल्ली के सम्राट् शाहजहाँ के साथ मालवे के वीर और मनस्वी नवाब खाँजहाँ लोदी के युद्ध का, उनकी अलौकिक वीरता का, आत्माभिमान और बहादुरी का, अपूर्व चित्र खींचा गया है। इसे जितनी बार पढ़िए—ध्यान देकर इस पर विचार कीजिए, जो नहीं भरेगा। यह नाटक अनेक जगह अनेक बार खेला जा चुका है। इसके करुण-रस के दृश्यों को देखकर लोगों के

आँसू तक निकल आते हैं । तृतीयावृत्ति । मूल्य सजिल्द १॥=), सादी १=)

मूर्खमंडली—रचयिता, पं० रूपनारायणजी पांडेय । सुप्रसिद्ध नाटककार श्रीद्विजेंद्रलाल राय एम्०ए० के अत्यंत मनोरंजक और सभ्य-हास्यरस-पूर्ण प्रहसन के आधार पर—हिंदी-रंगमंच पर खेले जाने के योग्य बनाने के अभिप्राय से कुछ फेर-फार करके—इस अपूर्व पुस्तक की रचना हुई है । द्विजेंद्रलाल राय के प्रहसन में यह सर्वश्रेष्ठ है । ३ वर्ष के अंदर ही इसके ४ संस्करण हो चुके हैं, और अब तक यह कम-से-कम ५० जगह खेला जा चुका है । इसे पढ़कर आप हँसते-हँसते लोट पोट हो जायँगे । यह प्रहसन नाटकीय गुणों से पूर्ण है । हम दावे के साथ कह सकते हैं कि इससे अधिक मनोरंजक प्रहसन आपने हिंदी में नहीं पढ़ा होगा । सभी हिंदी पत्रों और विद्वानों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है । छपाई-सफाई देखकर तो आप मुग्ध ही हो जायँगे । मूल्य सजिल्द प्रति का १), सादी का ॥)

रावबहादुर—अनुवादक, पं० ललीप्रसाद पाण्डेय । इसके लेखक मौलियर प्रहसन की रचना में अद्वितीय माने गए हैं । उनकी अन्य रचनाओं की तरह इस प्रहसन के भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो गए हैं । इसमें ख़िताब के लालच में पानी की तरह रुपया बहानेवाले, उपाधि के लोभ में फँसे हुए एक उच्च कुल के कम पढ़े-लिखे, पर अपने को दिग्गज विद्वान् गिननेवाले मनचले मूर्ख—घर-फूँकबहादुर—का ख़ाका ख़ासी तौर से खींचा गया है । कागज़ बढ़िया । छपाई सुंदर । मूल्य ॥।) सजिल्द १।)

मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ